वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 17
ISBN-978-93-80353-66-1

बाल विकास

(चतुर्थ भाग)

–रचयित्री –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

18वाँ संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
2200 प्रतियाँ	वैशाख शु. तृतीया, 13 मई 2013	20/-रुपये

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादकः–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

सन् 1974 से सन् 2006 तक – लगभग 50000 प्रतियाँ प्रकाशित, सोलहवाँ संस्करण-सन् 2007, प्रतियाँ-2000, सत्रहवाँ संस्करण-सन् 2010, प्रतियाँ 2200

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी ने जैनधर्म के चारों अनुयोगों पर 250 से अधिक पुस्तकों का लेखन, ग्रंथों की हिन्दी व संस्कृत टीकाएँ, इन्द्रध्वज, आदि काव्यात्मक पूजन के ग्रंथ लिखे हैं। उसी श्रृँखला में बालकों को सुबोध शैली में ज्ञान कराने के उद्देश्य से बाल विकास नामक पुस्तक को चार भागों (सचित्र) में लिखकर प्रदान किया है।

जीवन में संस्कारों का बहुत महत्व है। उत्तम देश, उच्च कुल एवं मानव पर्याय प्राप्त होकर भी यदि मानव को सदाचरणरूपी अच्छे संस्कार प्राप्त नहीं होते हैं तो उसका जीवन पशु के समान ही निस्सार हो जाता है। कहा भी है-''ज्ञानेन हीनः पशुभिः समानः'' अर्थात् ज्ञान से रहित मानव पशु के समान माना जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक मानव को सुसंस्कारित होने के लिए तथा जिनागम के रहस्य को समझने के लिए बाल अवस्था से ही धार्मिक-नैतिक ज्ञान का ग्रहण करना बहुत ही आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रखकर बालकों को ज्ञान कराने के लिए बाल विकास नाम से पुस्तकें चार भागों में प्रकाशित की गई हैं, जिसका यह चतुर्थ भाग है।

इसकी लोकप्रियता इस बात से सिद्ध हो जाती है कि सन् 1974 से अब तक इसकी लगभग 50000 से भी ज्यादा प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

समाज के द्वारा संचालित समस्त शिक्षण संस्थाओं के संचालकों से अनुरोध है कि बाल विकास चारों भाग मंगाकर बालक-बालिकाओं को भगवान महावीर स्वामी की वाणी का रसास्वादन करने की प्रेरणा करें। शिक्षण की व्यवस्था करावें एवं यथासमय उनकी परीक्षाओं की भी व्यवस्था करके ज्ञानार्जन एवं ज्ञानदान का महान पुण्य लाभ अर्जित करें।

विषय सूची

पाठ	विषय	पृष्ठ
1.	पार्श्वनाथ स्तुति	5
2.	तीर्थंकर जन्मभूमि तीर्थ वंदना	6
3.	पंचपरमेष्ठी के मूलगुण	7
4.	पाँच अणुव्रत	14
5.	श्रावक के 12 व्रत	18
6.	ग्यारह प्रतिमा	20
7.	ध्यान के भेद	23
8.	गुणस्थान	25
9.	कर्मबंध के भेद	28
10.	षट् आवश्यक क्रिया	37
11.	दान का लक्षण	40
12.	चतुर्निकाय देव	46
13.	जीवसमास आदि	47
14.	रत्नत्रय	49
15.	पर्याप्ति	51
16.	प्राण	52
17.	संज्ञा	53
18.	सोलहकारण भावना	54
19.	दस धर्म	55
20.	चौदह मार्गणा	57
21.	जम्बूद्वीप और चैत्यालय	59
22.	षट्काल परिवर्तन	62
23.	प्रमाण और नय	64
24.	स्याद्वाद और सप्तभंगी	67
25.	भगवान पार्श्वनाथ	68
26.	भगवान बाहुबली	71 – 72

पाठ 1-पार्श्वनाथ स्तुति

भवसंकट हर्ता पार्श्वनाथ! विघ्नों के संहारक तुम हो।
हे महामना! हे क्षमाशील! मुझमें भी पूर्ण क्षमा भर दो।।
यद्यपि मैंने शिवपथ पाया, पर यह विघ्नों से भरा हुआ।
इन विघ्नों को अब दूर करो, सब सिद्धि लहूँ निर्विघ्नतया।।1।।

वाराणसि नगरी धन्य हुई, धन धन्य हुए सब नर नारी।
हे अश्वसेननंदन ! तुम से, वामा माँ भी मंगलकारी।।
वैशाख वदी वह दूज भली, माता उर आप पधारे थे।
श्री आदि देवियों ने आकर, माता से प्रश्न विचारे थे।।2।।

शुभ पौष वदी ग्यारस तिथि थी, जब आए प्रभु साक्षात् यहां।
शैशव में सुर संग खेल रहे, अहि युग को दीना मंत्र महा।।
तव नागयुगल धरणेन्द्र तथा, पद्मावती होकर भक्त बने।
शुभ पौष वदी ग्यारस के दिन, प्रभु दीक्षा ले मुनि श्रेष्ठ बने।।3।।

तत्क्षण मनपर्ययज्ञानी हो, सब ऋद्धी से परिपूर्ण हुए।
इक समय सघन वन के भीतर, प्रभु निश्चल ध्यानारूढ़ हुए।।
कमठासुर ने उपसर्ग किया, अग्नी ज्वाला को उगल-उगल।
पत्थर फेंके मूसलधारा, वर्षायी आंधी उछल-उछल।।4।।

निष्कारण ही कमठासुर ने, दश भव तक बैर निकाला था।
प्रभु को दुख दे देकर उसने, खुद को दुर्गति में डाला था।।
प्रभु महा-सहिष्णु क्षमा-सिन्धु, भव-भव से सहते आये हैं।
तन से ममता को छोड़ दिया, नहिं किंचित् भी घबराए हैं।।5।।

प्रभु क्षपक श्रेणि में चढ़ करके, मोहनी कर्म का नाश किया।
उस ही क्षण धरणीपति पद्मावति, आ करके बहुभक्ति किया।।
प्रभु को मस्तक पर धारण कर, ऊपर से फण का छत्र किया।
प्रभुवर ने तब उस ही क्षण में, कैवल्य श्री को वरण किया।।6।।

पृथ्वी से बीस हजार हाथ, ऊपर पहुँचे अर्हन्त बने।
इन्द्रों के आसन कांप उठे, प्रभु समवसरण गगनांगण में।।
वदि चैत्र चतुर्थी[1] तिथि उत्तम, जब प्रभु में ज्ञान प्रकाश हुआ।
उस स्थल का उस ही क्षण से, 'अहिच्छत्र' तीर्थ यह नाम हुआ।।7।।

नव हाथ देह सौ वर्ष आयु, मरकतमणि सम आभाधारी।
अहि चिह्न सहित वे पार्श्वप्रभो! मुझको हों नित मंगलकारी।।
श्रावण सुदि सप्तमि तिथि के दिन, सिद्धीकांता से प्रीति लगी।
मैं नमूं 'ज्ञानमती' तुम्हें सदा, मेरी हो सर्वंसहा मती।।8।।

पाठ 2-तीर्थंकर जन्मभूमि तीर्थ वंदना

रचयित्री-आर्यिका चन्दनामती

– शेर छन्द–

जय जय जिनेन्द्र जन्मभूमियाँ प्रधान हैं। जय जय जिनेन्द्रजन्म की महिमा महान है।।
जय जय सुरेन्द्रवंद्य ये धरा पवित्र हैं। जय जय नरेन्द्र वंद्य ये तीरथ प्रसिद्ध हैं।।1।।

मिश्री से जैसे अन्न में मिठास आती है। वैसे ही पवित्रात्मा तीरथ बनाती हैं।।
हो गर्भ जन्म दीक्षा व ज्ञान जहाँ पर। वे तीर्थ कहे जाते हैं आज धरा पर।।2।।

जिनवर जनम से पहले वहाँ इन्द्र आते हैं। नगरी को सुसज्जित कर उत्सव मनाते हैं।।
सुंदर महल सजाया जाता है वहाँ पर। जिनवर के पिता-माता रहते हैं वहाँ पर।।3।।

पहली जनमभूमि है नगरि तीर्थ अयोध्या। शाश्वत जनमभूमी प्रभू की कीर्ति अयोध्या।।
इस युग में किन्तु पाँच जिनेश्वर वहाँ जन्मे। वृषभाजित अभीनंदन सुमति अनंत्वे।।4।।

श्रावस्ती ने संभव जिनेन्द्र को जनम दिया। कौशाम्बी में श्रीपद्मप्रभू ने जनम लिया।।
वाराणसी सुपार्श्व पार्श्व से पवित्र है। श्रीचन्द्रपुरी चन्द्रप्रभू से प्रसिद्ध है।।5।।

काकन्दी को सौभाग्य मिला पुष्पदंत का। है भद्रपुरी जन्मस्थल शीतल जिनेन्द्र का।।
श्रेयाँसनाथ से पवित्र सारनाथ है। जिनशास्त्रों में जो सिंहपुरी से विख्यात है।।6।।

श्रीवासुपूज्य जन्मभूमि चम्पापुरी है। कम्पिल जी विमलनाथ जिनकी जन्मस्थली है।।
तीरथ रतनपुरी है धर्मनाथ की भूमी। रौनाही से प्रसिद्ध है वह आज भी भूमी।।7।।

श्रीशांति कुंथु अरहनाथ हस्तिनापुर में। जन्मे जिनेन्द्र तीनों त्रयलोक भी हरषे।।
मिथिलापुरी में मल्लि व नमिनाथ जी जन्मे। तीर्थेश मुनिसुव्रत जी राजगृही में।।8।।

है जन्मभूमि शौरीपुर नेमिनाथ की। महावीर से कुण्डलपुरी नगरी सनाथ थी।।
चौबीस जिनवरों की जन्मभूमि को नमूँ। कर बार-बार वंदना सार्थक जनम करूँ।।9।।

श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा मिली। कई जन्मभूमियों में नई ज्योति तब जली।।
उन प्रेरणा से जन्मभूमि वन्दना रची। प्रभु जन्मभूमि तीर्थों की भक्ति मन बसी।।10।।

प्रभु बार-बार मैं जगत में जन्म ना धरूँ। इक बार जन्मधार बस जीवन सफल करूँ।।
इस भाव से ही जन्मभूमि वन्दना करूँ। निज भाव तीर्थ प्राप्ति की अभ्यर्थना करूँ।।11।।

यह भक्तिसुमन थाल है गुणमाल का प्रभु जी।अर्पण करूँ है भावना यात्रा करूँ सभी।।
बस "चन्दनामती" की इक आश है यही। संयम की ही परिपूर्णता जीवन की हेनिधी।।12।।

---

1. कहीं चतुर्दशी भी आता है।

पाठ 3–पंच परमेष्ठी के मूलगुण

जो परम अर्थात् इन्द्रों के द्वारा पूज्य, सबसे उत्तम पद में स्थित हैं, वे परमेष्ठी कहलाते हैं। वे पाँच होते हैं– अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु।

अरिहंत का स्वरूप

जिनके चार घातिया कर्म नष्ट हो चुके हैं, जिनमें 46 गुण हैं और 18 दोष नहीं हैं, उन्हें अरिहंत परमेष्ठी कहते हैं।

दोहा– चौंतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनंतचतुष्टय गुण सहित, छियालीसों पाठ।।1।।

34 अतिशय + 8 प्रातिहार्य और + 4 अनंतचतुष्टय ये अरिहंत के 46 मूलगुण हैं। उत्तरगुण अनन्त हैं।

सर्व साधारण प्राणियों में नहीं पायी जाने वाली अद्‌भुत या अनोखी बात को अतिशय कहते हैं। इन 34 अतिशयों में जन्म के 10, केवलज्ञान के 10 और देवकृत 14 होते हैं।

जन्म के 10 अतिशय –

अतिशय रूप सुगंध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रियहित वचन अतुल्यबल, रुधिर श्वेत आकार।।
लक्षण सहसरु आठ तन, समचतुष्क संठान।
वज्रवृषभनाराचजुत ये जनमत दस जान।।

अतिशय सुन्दर शरीर, अत्यन्त सुगंधित शरीर, पसीना रहित शरीर, मल-मूत्र रहित शरीर, हित-मित-प्रिय वचन, अतुल-बल, सफेद खून, शरीर में 1008 लक्षण, समचतुरस्र संस्थान और वज्रवृषभनाराच संहनन ये 10 अतिशय अरिहंत भगवान के जन्म से ही होते हैं।

केवलज्ञान के 10 अतिशय –

योजन शत इक में सुभिख, गगन-गमन मुख चार।
नहिं अदया, उपसर्ग नहीं, नाहीं कवलाहार।।
सब विद्या ईश्वरपनो, नाहिं बढ़े नख-केश।
अनिमिष दृग छाया रहित, दश केवल के वेष।।

भगवान के चारों ओर सौ-सौ योजन[1] तक सुभिक्षता, आकाश में गमन, एक मुख होकर भी चार मुख दिखना, हिंसा न होना, उपसर्ग नहीं होना, ग्रास वाला आहार नहीं लेना, समस्त विद्याओं का स्वामीपना, नख केश नहीं बढ़ना, नेत्रों की पलकें नहीं लगना और शरीर की परछाई नहीं पड़ना। केवलज्ञान होने पर ये दश अतिशय होते हैं।

देवकृत 14 अतिशय

देव रचित हैं चार दश, अर्ध मागधी भाष।
आपस माहीं मित्रता, निर्मल दिश आकाश।।
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथ्वी काँच समान।
चरण कमल तल कमल हैं, नभतैं जय-जय बान।।
मंद सुगंध बयार पुनि, गंधोदक की वृष्टि।
भूमि विषै कंटक नहीं, हर्षमयी सब सृष्टि।।
धर्मचक्र आगे रहे, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्री अरिहंत के, ये चौंतीस प्रकार।।

भगवान की अर्ध-मागधी भाषा, जीवों में परस्पर मित्रता, दिशाओं की निर्मलता, आकाश की निर्मलता, छहों ऋतुओं के फल-फूलों का एक ही समय में फलना-फूलना, एक योजन तक पृथ्वी का दर्पण की तरह निर्मल होना, चलते समय भगवान् के चरणों के नीचे सुवर्ण कमल की रचना, आकाश में जय-जय शब्द, मंद सुगंधित पवन, सुगंधमय जल की वर्षा, पवन कुमार देवों द्वारा भूमि की निष्कंटकता, समस्त प्राणियों को आनन्द, भगवान् के आगे धर्मचक्र का चलना और आठ मंगल द्रव्यों का साथ रहना ये 14 अतिशय देवों द्वारा किये जाने से देवकृत कहलाते हैं और केवलज्ञान होने पर होते हैं।

आठ प्रातिहार्य –

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र शिर पर फिरें, भामंडल पिछवार।।
दिव्यध्वनी मुखते खिरें, पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढोरें चौंसठ चमर जख, बाजें दुंदुभि जोय।।

1. चार कोश का एक योजन, दो मील का एक कोश।

भगवान के पास अशोक वृक्ष, रत्नमय सिंहासन, भगवान के सिर पर तीन छत्र, पीठ पीछे भामंडल, दिव्यध्वनि, देवों द्वारा पुष्प वर्षा, यक्षदेवों द्वारा चौंसठ चंवर ढोरे जाना और दुंदुभि बाजे बजना ये आठ प्रातिहार्य हैं। विशेष शोभा की चीजों को प्रातिहार्य कहते हैं।

अनन्त चतुष्टय –

ज्ञान अनन्त, अनन्त सुख, दरश अनंत प्रमान।
बल अनंत अरिहंत सो, इष्टदेव पहिचान।।

अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य ये चार अनंत चतुष्टय हैं अर्थात् भगवान के ये दर्शन-ज्ञानादि अन्त रहित होते हैं।

अठारह दोषों के नाम –

जन्म जरा तिरखा क्षुधा, विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद।।
राग द्वेष अरु मरण जुत, ये अष्टादश दोष।
नाहिं होत अरिहंत के, सो छवि लायक मोष।।

जन्म, बुढ़ापा, प्यास, भूख, आश्चर्य, पीड़ा, दुःख, रोग, शोक, गर्व, मोह, भय, निद्रा, चिन्ता, पसीना, राग, द्वेष और मरण ये अठारह दोष अरिहंत भगवान में नहीं होते हैं।

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

जो आठों कर्मों का नाश हो जाने से नित्य, निरंजन, अशरीरी हैं, लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं, वे सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं। इनके आठ मूलगुण होते हैं, उत्तरगुण तो अनन्तानंत हैं।

सोरठा – समकित दरसन ज्ञान, अगुरुलघू अवगाहना।
सूक्षम वीरज वान, निराबाध गुण सिद्ध के।।

क्षायिक सम्यक्त्व, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अनंतवीर्य और अव्याबाधत्व ये आठ मूल (मुख्य) गुण सिद्धों के हैं।

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

जो पाँच आचारों का स्वयं पालन करते हैं और दूसरे मुनियों से कराते हैं, मुनि संघ के अधिपति हैं और शिष्यों को दीक्षा व प्रायश्चित्त आदि देते हैं,

वे आचार्य परमेष्ठी हैं। इनके 36 मूलगुण होते हैं।

छत्तीस मूलगुण –

द्वादश तप, दश धर्मजुत, पालें पंचाचार।
षट् आवश्यक, गुप्ति त्रय, आचारज गुणसार।।

12 तप, 10 धर्म, 5 आचार, 6 आवश्यक और 3 गुप्ति ये आचार्य के 36 मूलगुण हैं। उत्तर गुण अनेक हैं।

तप के नाम –

अनशन ऊनोदर करें, व्रत संख्या रस छोर।
विविक्त शयन आसन धरें, काय कलेश सुठोर।।
प्रायश्चित्त धर विनयजुत, वैयावृत स्वाध्याय।
पुनि उत्सर्ग विचारि के, धरैं ध्यान मन लाय।।

अनशन (उपवास), ऊनोदर (भूख से कम खाना), व्रतपरिसंख्यान (आहार के समय अटपटा नियम), रसपरित्याग (नमक आदि रस त्याग), विविक्त शय्यासन (एकांत स्थान में सोना, बैठना), कायक्लेश (शरीर से गर्मी, सर्दी आदि सहन करना) ये छह बाह्य तप हैं। प्रायश्चित्त (दोष लगने पर दण्ड लेना), विनय (विनय करना), वैयावृत्य (रोगी आदि साधु की सेवा करना), स्वाध्याय (शास्त्र पढ़ना) व्युत्सर्ग (शरीर से ममत्व छोड़ना) और ध्यान (एकाग्र होकर आत्मचिन्तन करना) ये छह अंतरंग तप हैं।

दस धर्म –

छिमा मारदव आरजव, सत्य वचन चित पाग।
संजम तप त्यागी सरब, आकिंचन तिय त्याग।।

उत्तम क्षमा–क्रोध नहीं करना, **मार्दव**–मान नहीं करना, **आर्जव**–कपट नहीं करना, **सत्य**–झूठ नहीं बोलना, **शौच**–लोभ नहीं करना, **संयम**–छह काय के जीवों की दया पालना, पाँच इन्द्रिय और मन को वश करना, **तप**–बारह प्रकार के तप करना, **त्याग**–चार प्रकार का दान देना, **आकिंचन्य**–परिग्रह का त्याग करना और **ब्रह्मचर्य**–स्त्रीमात्र का त्याग करना।

आचार तथा गुप्ति–

दर्शन ज्ञान चरित्र तप, वीरज पंचाचार।
गोपें मन वच काय को, गिन छत्तिस गुणसार।।

दर्शनाचार–दोषरहित सम्यग्दर्शन, **ज्ञानाचार**–दोषरहित सम्यग्ज्ञान, **चारित्राचार**–निर्दोषचारित्र, **तपाचार**–निर्दोष तपश्चरण और **वीर्याचार**–अपने आत्मबल को प्रगट करना ये पाँच आचार हैं।

मनोगुप्ति–मन को वश में करना, **वचनगुप्ति**–वचन को वश में करना और **कायगुप्ति**–काय को वश में रखना ये तीन गुप्तियाँ हैं।

छह आवश्यक–

समता धर वंदन करें, नानाथुती बनाय।
प्रतिक्रमण, स्वाध्यायजुत, कायोत्सर्ग लगाय।।

समता–समस्त जीवों पर समता भाव और त्रिकाल सामायिक, **वंदना**–किसी एक तीर्थंकर को नमस्कार, **स्तुति**–चौबीस तीर्थंकर की स्तुति, **प्रतिक्रमण**–लगे हुए दोषों को दूर करना, **स्वाध्याय**–शास्त्रों को पढ़ना और **कायोत्सर्ग**–शरीर से ममत्व छोड़ना और ध्यान करना ये छह आवश्यक हैं। (मूलाचार आदि में स्वाध्याय की जगह 'प्रत्याख्यान' नामक क्रिया है, जिसका अर्थ है कि आगे होने वाले दोषों का, आहार-पानी आदि का त्याग करना) यहाँ तक आचार्य के 36 मूलगुण हुए।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

जो मुनि 11 अंग और 14 पूर्व के ज्ञानी होते हैं अथवा तत्काल के सभी शास्त्रों के ज्ञानी होते हैं तथा जो संघ में साधुओं को पढ़ाते हैं वे उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं। 11 अंग और 14 पूर्व को पढ़ना-पढ़ाना ही इनके 25 मूलगुण हैं।

ग्यारह अंग–

प्रथमहिं आचारांग गनि, दूजो सूत्रकृतांग।
ठाण अङ्ग तीजो सुभग, चौथो समवायांग।।
व्याख्यापण्णति पांचमों, ज्ञातृकथा षट् जान।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तःकृत् दश जान।।
अनुत्तरण उत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान।
बहुरि प्रश्न व्याकरण जुत, ग्यारह अंग प्रमाण।।

आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग और विपाकसूत्राँग ये 11 अंग हैं।

चौदह पूर्वों के नाम–

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।
अस्तिनास्तिपरवाद पुनि, पंचम ज्ञान प्रवाद।।
छट्ठो कर्मप्रवाद है, सत्प्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान।।
विद्यानुवाद पूरब दशम, पूर्व कल्याण महंत।
प्राणवाद किरिया बहुल, लोकबिंदु है अन्त।।

उत्पादपूर्व, अग्रायणीपूर्व, वीर्यानुवादपूर्व, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व, सत्प्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व, विद्यानुवादपूर्व, कल्याणप्रवादपूर्व, प्राणानुवादपूर्व, क्रियाविशालपूर्व और लोकबिंदुपूर्व ये 14 पूर्व हैं।

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

जो पाँचों इन्द्रियों के विषयों से तथा आरंभ और परिग्रह से रहित होते हैं, ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहते हैं ऐसे दिगम्बर मुनि मोक्षमार्ग का साधन करने वाले होने से साधु परमेष्ठी कहलाते हैं। इनके 28 मूलगुण होते हैं।

अट्ठाइस मूलगुणों के नाम–

पंच महाव्रत समिति पन, पंचेन्द्रिय का रोध।
षट् आवश्यक साधु गुण, सात शेष अवबोध।।

5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रियविजय, 6 आवश्यक और 7 शेष गुण, ये साधु के 28 मूलगुण हैं।

पाँच महाव्रत–

हिंसा, अनृत, तस्करी, अब्रह्म, परिग्रह पाप।
मन वच तन तें त्यागवो, पंच महाव्रत थाप।।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँचों पापों का मन वचन काय से सर्वथा त्याग कर देना ये पाँच महाव्रत कहलाते हैं।

पाँच समिति–

ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापना जुत क्रिया, पाँचों समिति निधान।।

ईर्यासमिति–चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना, **भाषा समिति–** हित-मित-प्रिय वचन बोलना, **एषणासमिति–**निर्दोष आहार लेना, **आदान निक्षेपण समिति–**पिच्छी से पुस्तक आदि को देख-शोधकर उठाना धरना, **प्रतिष्ठापना समिति–**जीव रहित भूमि में मलादि विसर्जित करना, ये पाँच समिति हैं।

इन्द्रियविजय और शेष मूलगुण –

सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत का रोध।
शेष सात मंजन तजन, शयन भूमि का शोध।।
वस्त्र त्याग कचलुंच अरु, लघु भोजन इक बार।
दाँतुन मुख में ना करें, ठाड़े लेहिं अहार।।

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण– इन पाँचों इन्द्रियों को वश करना ये इन्द्रियविजय नामक पाँच मूलगुण हैं।

स्नान का त्याग, भूमि पर शयन, वस्त्र त्याग, केशों का लोच, दिन में एक बार लघु भोजन, दांतोन का त्याग और खड़े होकर आहारग्रहण ये 7 शेष गुण हैं। पाँचों परमेष्ठी के सब मिलकर 46+8+36+25+28=143 मूलगुण हो जाते हैं।

प्रश्नावली–(1) परमेष्ठी किसे कहते हैं? (2) अरिहंत परमेष्ठी के कितने मूलगुण हैं? (3) जन्म के दश अतिशय और चार अनंत चतुष्टय के नाम बताओ? (4) सिद्धों के मूल गुण कितने हैं? (5) आचार्य किसे कहते हैं? (6) बारह तप के नाम बताओ? (7) पाँच आचारों के लक्षण कहो? (8) चौदह पूर्वों के नाम बताओ? (9) साधु परमेष्ठी के कितने मूलगुण हैं? (10) षट् आवश्यक क्रिया और सात शेष गुणों के नाम बताओ? (11) आचार्य, उपाध्याय और साधु में क्या अन्तर है?

पाठ 4- पाँच अणुव्रत

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँचों पापों के अणु अर्थात् एकदेश त्याग को अणुव्रत कहते हैं।

अहिंसा अणुव्रत–मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से संकल्पपूर्वक (इरादापूर्वक) किसी त्रस जीव को नहीं मारना अहिंसा अणुव्रत है। जीव दया का फल चिंतामणि रत्न की तरह है, जो चाहो सो मिलता है।

उदाहरण–काशी के राजा पाक शासन ने एक समय अपनी प्रजा को महामारी कष्ट से पीड़ित देखकर ढिंढोरा पिटवा दिया कि नंदीश्वरपर्व में आठ दिन पर्यंत किसी जीव का वध न हो। इस राजाज्ञा का उल्लंघन करने वाला प्राणदण्ड का भागी होगा। वहीं का धर्म नाम का एक सेठपुत्र राजा के बगीचे में जाकर राजा के खास मेढ़े को मारकर खा गया। जब राजा को इस घटना का पता चला, तब उन्होंने उसे शूली पर चढ़ाने का आदेश दिया।

शूली पर चढ़ाने हेतु कोतवाल ने यमपाल चांडाल को बुलाने के लिए सिपाही भेजे। सिपाहियों को आते देखकर चांडाल ने अपनी स्त्री से कहा कि प्रिये! मैं सर्वौषधि ऋद्धिधारी दिगम्बर मुनिराज से जिनधर्म का पवित्र उपदेश सुनकर यह प्रतिज्ञा ली है कि 'मैं चतुर्दशी के दिन कभी जीव हिंसा नहीं करूँगा।' अतः तुम इन नौकरों को कह देना कि मेरे पति दूसरे ग्राम गये हुए हैं। ऐसा कहकर वह एक तरफ छिप गया किन्तु स्त्री ने लोभ में आकर हाथ से उस तरफ इशारा करते हुए ही कहा कि वे बाहर गये हैं। स्त्री के हाथ का इशारा पाकर सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और राजा के पास ले गये।

राजा के सामने भी यमपाल ने दृढ़तापूर्वक सेठपुत्र को मारने से इंकार कर दिया। राजा ने क्रोध में आकर हिंसक सेठपुत्र और यमपाल चांडाल इन दोनों को ही मगरमच्छ से भरे हुए तालाब में डलवा दिया। उस समय पापी सेठपुत्र को तो जलचर जीवों ने खा लिया और यमपाल के व्रत के प्रभाव से देवों ने आकर उसकी रक्षा की। उसको सिंहासन पर बिठाया एवं उसका अभिषेक करके

स्वर्ग के दिव्य वस्त्र अलंकारों से उसे सम्मानित किया। राजा भी इस बात को सुनते ही वहाँ पर आये और यमपाल चांडाल का खूब सम्मान किया।

देखो बालकों! अहिंसाव्रत के प्रभाव से चांडाल भी देवों के द्वारा सम्मान को प्राप्त हुआ है तो भला हम लोग क्यों नहीं सुख को प्राप्त करेंगे?

सत्याणुव्रत—स्वयं स्थूल झूठ न बोले, न दूसरों से बुलवाये और ऐसा सच भी नहीं बोले कि जिससे धर्म आदि पर संकट आ जावे, सो सत्याणुव्रत है।

उदाहरण—जिनदेव और धनदेव दो व्यापारियों ने यह निर्णय किया कि परदेश में धन कमाकर पुनः आधा-आधा बांट लेंगे। बाद में अधिक धन देखकर जिनदेव झूठ बोल गया। तब राजा ने न्याय करके सत्यवादी धनदेव को सारी सम्पत्ति दे दी और सभा में उसका सम्मान किया तथा जिनदेव को अपमानित करके देश से निकाल दिया। इसलिए हमेशा सत्य बोलना चाहिए।

अचौर्याणुव्रत—किसी का रखा हुआ, पड़ा हुआ, भूला हुआ अथवा बिना दिया हुआ धन पैसा आदि द्रव्य नहीं लेना और न उठाकर किसी को देना अचौर्याणुव्रत कहलाता है।

उदाहरण—राजगृही के राजा श्रेणिक की रानी चेलना के सुपुत्र वारिषेण उत्तम श्रावक थे। एक बार चतुर्दशी को उपवास करके रात्रि में श्मशान में नग्न रूप में खड़े होकर ध्यान कर रहे थे। इधर विद्युत्चोर रात्रि में रत्नहार चुराकर भागा। सिपाहियों ने पीछा किया। तब वह चोर भागते हुए वन में पहुँचा। वहाँ ध्यानस्थ वारिषेण कुमार के सामने हार डालकर आप छिप गया। नौकरों ने वारिषेण को चोर घोषित कर दिया। राजा ने भी बिना विचारे प्राण दण्ड की आज्ञा दे दी। किन्तु धर्म का माहात्म्य देखिए! वारिषेण के गले पर चलाई गई

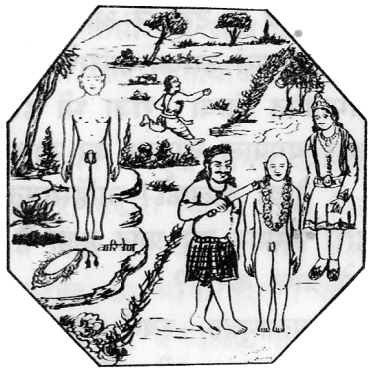

तलवार फूलों की माला बन गई। आकाश से देवों ने जयजयकार करके पुष्प बरसाये। राजा श्रेणिक ने यह सुनकर वहाँ आकर क्षमा याचना करते हुए अपने पुत्र से घर चलने को कहा किन्तु वारिषेण कुमार ने पिता को सान्त्वना देकर कहा कि अब मैं करपात्र में ही आहार करूँगा। अनन्तर सूरसेन मुनिराज के पास दिगम्बर दीक्षा ले ली। इसलिए अचौर्यव्रत का सदा पालन करना चाहिए।

ब्रह्मचर्याणुव्रत—अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय अन्य स्त्री के साथ काम सेवन नहीं करना, ब्रह्मचर्य अणुव्रत अथवा शीलव्रत कहलाता है। यह व्रत सभी व्रतों में अधिक महिमाशाली है। इसके पालन करने वाले को मनुष्य तो क्या देवता भी नमस्कार करते हैं।

उदाहरण—मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र की पत्नी सीता वनवास के समय पतिसेवा करना अपना कर्त्तव्य समझकर महलों के सुखों को छोड़कर पति के साथ वन-वन में घूमी थीं। उस वनवास के प्रसंग में रावण ने सीता के रूप पर मुग्ध होकर उसका हरण किया था। किन्तु पतिव्रता सीता ने रामचन्द्र के समाचार न मिलने तक अन्न-जल ग्रहण नहीं किया था। रावण के अनेक प्रलोभनों तथा उपसर्गों से भी वे चलायमान नहीं हुई थीं। अनंतर हनुमान ने 11 दिन बाद रामचन्द्र का समाचार देकर सीता को पारणा कराई थी।

पुनः भयंकर युद्ध में रावण को मारकर सीता को प्राप्त कर रामचन्द्र कुछ दिन बाद अयोध्या आ गये थे। वहाँ पर किसी के मुख से सीता की झूठी निंदा सुनकर रामचन्द्र ने मर्यादा की रक्षा हेतु धोखे से गर्भवती सीता को भयंकर वन में भेज दिया। अनन्तर पुण्डरीकिणी नगरी के राजा वज्रजंघ के यहाँ सीता ने अनंगलवण और मदनांकुश इन युगलपुत्रों को जन्म दिया। कालान्तर में रामचन्द्र ने सीता की अग्नि परीक्षा का निर्णय किया। तब सीता ने अग्निकुण्ड के सामने कहा—हे अग्निदेवता! यदि मैंने मन वचन काय से स्वप्न में भी परपुरुष को चाहा हो, तो तू मुझे भस्म कर दे तथा महामंत्र का स्मरण करते हुए अग्नि में कूद पड़ी। लोग हाहाकार करने लगे किन्तु शील के माहात्म्य से एक क्षण में ही वह अग्निकुण्ड जल का सरोवर बन गया, उसमें कमल खिल गये, देवियों ने

कमलासन पर सीता को विराजमान कर दिया, आकाश से पुष्प-वर्षा होने लगी। चारों तरफ से सीता के शील की जय-जयकार होने लगी। परीक्षा के बाद रामचन्द्र के अतीव आग्रह पर सीता ने घर न जाकर उसी स्थल पर केशलोंच कर दिया और शीघ्र ही जाकर पृथ्वीमती आर्यिका से आर्यिका दीक्षा ले ली।

धन्य है शील के माहात्म्य को कि जिससे अग्नि भी जल हो गई।

परिग्रह परिमाण अणुव्रत—धन, धान्य, मकान आदि वस्तुओं का जीवन भर के लिए परिमाण कर लेना, उससे अधिक की वांछा नहीं करना, परिग्रह-परिमाण अणुव्रत है। इस व्रत के पालन करने से आशाएं सीमित हो जाती हैं तथा नियम से सम्पत्ति बढ़ती है।

उदाहरण—हस्तिनापुर के राजा जयकुमार परिग्रह का प्रमाण कर चुके थे। एक बार सौधर्म इन्द्र ने स्वर्ग में जयकुमार के व्रत की प्रशंसा की। इस बात की परीक्षा के लिए वहाँ से एक देव ने आकर स्त्री का रूप धारण कर जयकुमार के पास अपनी स्वीकृति करने हेतु प्रार्थना की और विद्याधर के राज्य का प्रलोभन दिया। जयकुमार ने अपने व्रत की दृढ़ता रखते हुए सर्वथा उपेक्षा कर दी। तब उसने अनेक उपसर्ग किये और कहा कि आप विद्याधर का राज्य और अपना जीवन चाहते हैं तो मुझे स्वीकार करो। किन्तु जयकुमार की निस्पृहता को देखकर देव अपने रूप को प्रगट कर जयकुमार की स्तुति करके स्वर्ग की सारी बातें सुनकर चला गया। अतः परिग्रह का परिमाण अवश्य करना चाहिए।

विशेष—निरतिचार पालन किये गये ये अणुव्रत नियम से स्वर्ग को प्राप्त कराते हैं। जिनके नरक, तिर्यंच या मनुष्य की आयु बंध गई है, वे पंच अणुव्रत नहीं ले सकते हैं।

प्रश्नावली—(1) पाँच अणुव्रत के नाम बताओ? (2) यमपाल चांडाल को अहिंसाणुव्रत का पालन करने से क्या फल मिला? (3) सत्याणुव्रत का लक्षण बताओ। (4) इस व्रत में कौन प्रसिद्ध हुए हैं? (5) वारिषेण कुमार जब वन में ध्यान कर रहे थे तब श्रावक थे या मुनि? (6) परिग्रह परिमाणव्रत का लक्षण बताओ? (7) इस व्रत में कौन प्रसिद्ध हुए हैं? (8) पंचाणुव्रत पालन करने वालों को नरक गति होती है या नहीं?

पाठ 5–श्रावक के 12 व्रत

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये बारह व्रत कहलाते हैं। पाँच अणुव्रतों का लक्षण बताया जा चुका है। अब यहाँ गुणव्रत और शिक्षाव्रतों को बतलाते हैं।

गुणव्रत

जो अणुव्रतों को बढ़ाते हैं अथवा उसमें दृढ़ता या मजबूती लाने वाले होते हैं उन्हें गुणव्रत कहते हैं। उनके तीन भेद हैं–दिग्व्रत, अनर्थदण्डविरतिव्रत और भोगोपभोग परिमाणव्रत।

(1) दिग्व्रत—लोभ या आरंभ के घटाने के लिए दशों दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा जीवन भर के लिए कर लेना दिग्व्रत कहलाता है। जैसे-किसी ने पूर्व दिशा में बंग देश, पश्चिम में सिंधु नदी, उत्तर में हिमालय और दक्षिण में कन्याकुमारी से आगे जीवनपर्यंत नहीं जाने का नियम कर लिया है। मर्यादा के बाहर सम्पूर्ण आरंभादि का त्याग हो जाने से वहाँ पर अणुव्रत, महाव्रत के सदृश हो जाते हैं अर्थात् मर्यादा के बाहर सूक्ष्म भी हिंसादि दोष नहीं होता है।

(2) अनर्थदण्डविरतिव्रत—मर्यादा के बाहर भी बिना प्रयोजन ही जिन कार्यों में पाप का आरंभ होता है उन निरर्थक कार्यों का त्याग करना अनर्थदण्डविरतिव्रत कहलाता है। इसके पाँच भेद हैं-पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुश्रुति और प्रमादचर्या। पापवर्द्धक कार्यों का उपदेश देना, शस्त्र या जहर आदि मांगने से देना, किसी का बुरा सोचना, मिथ्याशास्त्रों का पढ़ना और बिना कारण पानी आदि गिराना इन पाँच का त्याग कर देना अनर्थदण्डविरतिव्रत कहलाता है।

(3) भोगोपभोग परिमाण व्रत—दिग्व्रत की मर्यादा के भीतर भी प्रयोजनभूत भोजन, वस्त्र आदि भोग-उपभोग की वस्तुओं का परिमाण करके शेष का जीवन भर के लिए त्याग कर देना भोगोपभोग परिमाणव्रत कहलाता है।

जो वस्तु एक बार भोगने में आती है उसे भोग कहते हैं। जैसे–भोजन-पान आदि। जो वस्तु बार-बार भोगने में आती है उसे उपभोग कहते हैं। जैसे-वस्त्र, आभूषण आदि।

शिक्षाव्रत

जिन व्रतों के पालन करने में मुनिव्रत के पालन करने की शिक्षा मिलती है, उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं। उनके चार भेद हैं–देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैयावृत्य।

(1) देशावकाशिक व्रत–दिग्व्रत की मर्यादा के भीतर भी दिन, महिना आदि के लिए गली, मुहल्ला, नगर आदि का नियम करके आगे नहीं जाना देशावकाशिकव्रत है। जैसे–किसी ने अष्टान्हिका में अपने मुहल्ले से बाहर नहीं जाने का नियम कर लिया और उसके आगे नहीं जायेगा तो उसका यह प्रथम शिक्षाव्रत है।

(2) सामायिक व्रत–श्रावक प्रसन्नमना होकर वन में, गृह में अथवा चैत्यालय में पाँचों पापों का त्याग करके (सम्पूर्ण आरंभ आदि त्याग करके) विधिवत् सामायिक करे, यह द्वितीय शिक्षाव्रत है।

(3) प्रोषधोपवास–प्रत्येक महीने की दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशी में अन्नादि चारों प्रकार के आहार का त्याग करके उपवास करना अथवा एक बार भोजन करना प्रोषधोपवास कहलाता है। व्रत के दिन स्वाध्याय आदि धर्म कार्यों में समय बिताना चाहिए। चारों प्रकार के आहार का छोड़ना उपवास है। एक बार शुद्ध भोजन करना प्रोषध है। उपवास करके पारणा के दिन एक बार भोजन करना प्रोषधोपवास कहलाता है।

(4) वैयावृत्य–गृहत्यागी तपस्वी मुनियों को अपनी संपत्ति के अनुसार शुद्ध आहार, औषधि, शास्त्रादि-उपकरण और वसतिका का दान देना वैयावृत्य नाम का चौथा शिक्षाव्रत है। जैसे-मुनियों के गुण में अनुराग करते हुए उनके चरणों को दबाना, उनके ऊपर आई आपत्ति को दूर करना तथा नवधाभक्ति से उन्हें आहारदान देना आदि।

विशेष–घर में पंचसूना आदि आरंभ से जो पाप संचित होता है वह गृहत्यागी मुनियों के आहारदान से नष्ट हो जाता है।

अन्य ग्रंथों में इस व्रत को अतिथिसंविभाग व्रत कहा गया है। वहाँ भी यही अर्थ है।

श्री समन्तभद्र स्वामी ने इस वैयावृत्य नामक चतुर्थ शिक्षाव्रत में ही अर्हंत भगवान के चरणों की पूजा का विधान भी किया है।

इसके बाद मरण के अन्त में मेरी विधिवत् सल्लेखना हो, ऐसी भावना करते रहना चाहिए। वसुनंदिश्रावकाचार में तो शिक्षाव्रत में ही सल्लेखना को ग्रहण कर लिया गया है। अतः श्रावकों के लिए सल्लेखना भी एक व्रत माना गया है।

मरण के निकट आने पर गृह को छोड़कर अथवा घर में अन्नादि आहार को धीरे-धीरे छोड़ते हुए क्रम से कषायों को भी कृश करते हुए परस्पर में सभी को क्षमा करके और कराके निःशल्य होकर णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए मरण करना सल्लेखना कहलाती है।

प्रश्नावली–(1) बारह व्रतों के नाम बताओ? (2) अनर्थदण्ड व्रत का लक्षण और भेद बताओ? (3) शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? (4) दूसरे शिक्षाव्रत का लक्षण बताओ? (5) वैयावृत्य का लक्षण बताओ? (6) सल्लेखना का क्या स्वरूप है?

पाठ 6–ग्यारह प्रतिमा

सम्यग्दर्शन, अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत और सल्लेखना इन गुणों को धारण करने वाले श्रावक के ग्यारह पद या स्थान होते हैं। इन्हें प्रतिमा कहते हैं।

इन ग्यारह प्रतिमाओं में से किसी भी प्रतिमा में अपने पद के अनुसार चारित्र होते हुए भी पूर्व-पूर्व की प्रतिमा का चारित्र होना बहुत जरूरी है। श्रावक अपने संयम की उन्नति करता हुआ पहली से दूसरी, दूसरी से तीसरी इस प्रकार से ग्यारहवीं प्रतिमा तक चढ़ता है। इससे ऊपर चढ़कर मुनि हो जाता है।

ग्यारह प्रतिमाओं के नाम–(1) दर्शन (2) व्रत (3) सामायिक (4) प्रोषधोपवास (5) सचित्तत्याग (6) रात्रिभोजन त्याग (7) ब्रह्मचर्य (8) आरंभ त्याग (9) परिग्रह त्याग (10) अनुमति त्याग (11) उद्दिष्ट त्याग।

(1) दर्शन प्रतिमा–जो संसार शरीर भोगों से विरक्त, शुद्ध सम्यग्दर्शन का धारी, पंचपरमेष्ठी के चरण कमलों की शरण ग्रहण करने वाला और सच्चे मार्ग पर चलने वाला है, वह दर्शन प्रतिमाधारी कहलाता है। वह श्रावक पंच उदुम्बर और सप्तव्यसनों का तथा रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्यागी होता है।

(2) व्रत प्रतिमा—जो शल्यरहित होकर निरतिचार पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का पालन करता है, वह व्रत प्रतिमाधारी कहलाता है। इस प्रतिमा में सामायिक व्रत में दो समय सामायिक और विधिवत् देव पूजन करना आवश्यक है।

(3) सामायिक प्रतिमा—प्रतिदिन प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल इन तीनों कालों में कम से कम दो घड़ी तक विधिपूर्वक अतिचाररहित सामायिक[1] करना सामायिक प्रतिमा कहलाती है।

(4) प्रोषधोपवास प्रतिमा—प्रत्येक महीने की दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशी, ऐसे चारों पर्वों में अपनी शक्ति को न छिपाकर धर्मध्यान में लीन होते हुए प्रोषध को अथवा उपवास को अवश्य करना प्रोषध प्रतिमा का लक्षण है। प्रोषध का अर्थ एक बार भोजन करना होता है।

उत्कृष्ट प्रोषध प्रतिमा में सप्तमी और नवमी को एक बार शुद्ध भोजन और अष्टमी को उपवास होता है। जघन्य में अष्टमी को एक बार भोजन होता है। मध्यम में कई भेद हो जाते हैं।

(5) सचित्तत्याग प्रतिमा—कच्चे फल-फूल, बीज, पत्ते आदि नहीं खाना, इन्हें छिन्न-भिन्न करके, लवण आदि मिलाकर या गरम आदि करके प्रासुक बनाकर खाना, पानी भी प्रासुक करके पीना सचित्तत्याग प्रतिमा कहलाती है।

(6) रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा—जो दयालु श्रावक रात्रि में अन्न, खाद्य, लेह्य, पेय इन चारों आहारों का त्याग[2] कर देता है, वह रात्रि भुक्ति त्यागी छठी प्रतिमाधारी श्रावक होता है।

(7) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—मल का बीज, मल का स्थान, दुर्गंधियुक्त ऐसे शरीर का स्वरूप समझकर कामसेवन में पूर्णतया विरक्त होकर स्त्रीमात्र का त्याग कर देना अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य ग्रहण कर लेना ब्रह्मचर्य[3] प्रतिमा है।

(8) आरंभ त्याग प्रतिमा—हिंसा के कारण नौकरी, खेती, व्यापार आदि

1. सामायिक की विधि सामायिक नामक पुस्तक में देखना चाहिए। 2. यद्यपि पहली प्रतिमा में ही रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग हो जाता है, फिर भी पुत्र-पौत्रादि कुटुम्बीजन अथवा अन्य लोगों के निमित्त से कारित और अनुमोदना संबंधी जो दोष लगता था, उनका यहाँ त्याग हो जाता है। 3. कोई इस प्रतिमा में घर त्याग करके साधु-संघों में या मंदिर-धर्मशाला में रहते हैं, वे गृहविरत ब्रह्मचारी कहलाते हैं। फिर उन्हें घर का सूतक-पातक नहीं लगता है।

गृहकार्यसंबंधी सब तरह की क्रियाओं का त्याग करने वाला श्रावक आरंभ-त्यागी प्रतिमाधारी कहलाता है। इस प्रतिमा में दान, पूजन आदि धर्म कार्य संबंधी आरंभ कार्य कर सकते हैं। घर में रहकर भी धर्म साधन कर सकते हैं, घर छोड़कर भी कर सकते हैं।

(9) परिग्रह त्याग प्रतिमा—दस प्रकार के बाह्य परिग्रह को पाप का कारण समझकर त्याग कर देना परिग्रह त्याग प्रतिमा कहलाती है। इस प्रतिमा का धारी अपने लिए कुछ आवश्यक वस्त्र या बर्तन रख लेता है। घर का त्याग कर संघ में या धर्मशाला आदि में रहता है। श्रावक के द्वारा निमंत्रण आने पर शुद्ध भोजन करता है।

(10) अनुमति त्याग प्रतिमा—जो खेती, व्यापार, विवाह आदि गृहकार्य संबंधी किसी भी कार्य में अनुमोदना या सम्मति नहीं देता है वह अनुमति त्यागी कहलाता है। इस प्रतिमा का धारी भी संघ में या जिनमंदिर आदि में रहता है। श्रावक द्वारा बुलाने पर शुद्ध भोजन करके आता है और धर्म-ध्यान में तत्पर रहता है।

(11) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा—जो अपने घर को छोड़कर मुनियों के संघ में जाकर गुरु के पास दीक्षा लेकर तपश्चरण करता है और भिक्षावृत्ति से आहार ग्रहण करता है, निमंत्रण से भोजन नहीं करता है, खंड वस्त्र धारण करता है, वह उद्दिष्ट त्यागी प्रतिमाधारी कहलाता है।

इस ग्यारहवीं प्रतिमाधारी के दो भेद हैं—क्षुल्लक और ऐलक। क्षुल्लक एक लंगोटी और खंड वस्त्र (चादर) रखते हैं। सिर और दाढ़ी मूँछ की हजामत कैंची से या उस्तरा से करा लेते हैं अथवा केशलोंच भी कर लेते हैं। पिच्छी आदि उपकरण से स्थान आदि का प्रतिलेखन करते हैं, एक बार बैठकर पाणिपात्र या थाली में भोजन करते हैं। भिक्षावृत्ति से भोजन करते हैं अथवा गुरुओं के आहारार्थ निकल जाने पर उनके पीछे-पीछे आहार के लिए चले जाते हैं। ऐलक एक लंगोटी मात्र रखते हैं, नियम से केशलोंच करते हैं और करपात्र में आहार लेते हैं। इतना ही इन दोनों में अंतर है।

विशेष—ऐलक के बाद लंगोटी को भी त्याग करके तिलतुषमात्र परिग्रह को भी नहीं रखने वाले मुनि कहलाते हैं। ये 28 मूलगुणधारी साधु या आचार्य, उपाध्याय भी होते हैं। महिलाओं में ग्यारहवीं प्रतिमाधारी क्षुल्लिका

कहलाती है। ग्यारह प्रतिमा के अनन्तर आर्यिकाएं होती हैं। इनकी चर्या मुनियों के समान है, अन्तर इतना है कि ये दो साड़ी मात्र परिग्रह रखती हैं और बैठकर आहार करती हैं, अतः वे उपचार से महाव्रती कहलाती हैं। यद्यपि इनके पास साड़ी रहती है और ऐलक के पास एक लंगोटी मात्र है फिर भी ऐलक लंगोटी छोड़ सकता है किन्तु छोड़ता नहीं है। वह उपचार से भी महाव्रती नहीं हो सकता है। अतएव ऐलक आर्यिका से पद में छोटा माना जाता है और वह आर्यिकाओं को वंदामि करता है।

पहली प्रतिमा से छठी प्रतिमाधारीपर्यंत जघन्य श्रावक हैं। सातवीं से नवमीं तक मध्यम तथा दशवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं।

पहली प्रतिमा से ही श्रावकों को भोजन में केश, चिंवटी आदि आ जाने से अन्तराय करना चाहिए।

प्रश्नावली–(1) प्रतिमा किसे कहते हैं? (2) दूसरी, तीसरी, छठी, आठवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाओं के लक्षण बताओ? (3) ऐलक के कितनी प्रतिमा हैं? (4) आर्यिकाओं की चर्या कैसी होती है? (5) जघन्य श्रावक और उत्कृष्ट श्रावक किन-किन प्रतिमा में हैं?

पाठ 7–ध्यान के भेद

किसी एक विषय में चित्त को रोकना ध्यान है, इसके चार भेद हैं। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान।

आर्तध्यान–दुःख में होने वाले ध्यान को आर्तध्यान कहते हैं। इसके चार भेद हैं–

(1) इष्ट का वियोग हो जाने पर बार-बार उसका चिंतवन करना इष्ट वियोगज आर्तध्यान है।

(2) अनिष्ट का संयोग हो जाने पर बार-बार उससे दूर होने का सोचना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है।

(3) शरीर में रोग की पीड़ा होने से बार-बार दूर होने का सोचना पीड़ाजन्य आर्तध्यान है।

(4) आगामी काल में सुखों की इच्छा करना 'इस व्रत के फल से मैं राजा हो जाऊँ' आदि सोचना निदान आर्तध्यान है।

रौद्रध्यान–क्रूर परिणाओं से होने वाला ध्यान रौद्रध्यान है। इसके चार भेद हैं–

(1) हिंसा में आनंद मानना हिंसानंदी रौद्रध्यान है।

(2) झूठ बोलने में आनन्द मानना मृषानंदी रौद्रध्यान है।

(3) चोरी में आनन्द मानना चौर्यानंदी रौद्रध्यान है।

(4) परिग्रह के अतिसंग्रह में आनन्द मानना परिग्रहानंदी रौद्रध्यान है।

धर्मध्यान–धर्मविशिष्ट ध्यान को धर्मध्यान कहते हैं। इसके भी चार भेद हैं–

(1) युक्ति और उदाहरण की गति न होने पर आगम की प्रमाणता से वस्तु के श्रद्धान का विचार करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

(2) संसार में भटकते हुए जीव कैसे मोक्षमार्ग में लगें या कैसे भी हो, मैं इन्हें मोक्षमार्ग में लगा दूँ, ऐसा चिंतवन करना अपायविचय धर्मध्यान है।

(3) कर्मों के उदय से सुख-दुख होता है इत्यादि चिंतवन करना विपाकविचय धर्मध्यान है।

(4) लोक के आकार का विचार करना या पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ध्यानों का अभ्यास करना संस्थानविचय धर्मध्यान है।

शुक्लध्यान–शुद्ध ध्यान को शुक्लध्यान कहते हैं। इसके भी चार भेद हैं–

(1) पृथक्त्ववितर्क

(2) एकत्ववितर्क

(3) सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती

(4) व्युपरतक्रियानिवृत्ति।

इनमें से पहले के दो शुक्लध्यान श्रेणी में चढ़ने वाले मुनियों के होते हैं। शेष दो शुक्लध्यान केवली भगवान के होते हैं।

प्रश्नावली–(1) आर्तध्यान के कितने भेद हैं? (2) निदान आर्तध्यान का क्या लक्षण है? (3) हिंसानंदी और मृषानंदी का लक्षण बताओ? (4) धर्मध्यान के कितने भेद हैं? (5) आज्ञाविचय और संस्थानविचय का लक्षण बताओ।

पाठ 8-गुणस्थान

दर्शनमोहनीय आदि कर्मों की उदय, उपशम आदि अवस्था के होने पर जीव के जो परिणाम होते हैं, उन परिणामों को गुणस्थान कहते हैं। ये गुणस्थान मोह और योग के निमित्त से होते हैं। इन परिणामों से सहित जीव गुणस्थान वाले कहलाते हैं। इनके 14 भेद हैं–

1. मिथ्यात्व 2. सासादन 3. मिश्र 4. अविरत सम्यग्दृष्टि 5. देशविरत 6. प्रमत्तविरत 7. अप्रमत्तविरत 8. अपूर्वकरण 9. अनिवृत्तिकरण 10. सूक्ष्मसांपराय 11. उपशांतमोह 12. क्षीणमोह 13. सयोगकेवली जिन और 14. अयोगकेवली जिन।

(1) मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थ के अश्रद्धान को मिथ्यात्व गुणस्थान कहते हैं। इन गुणस्थान वाले मिथ्यादृष्टि जीव को सच्चा धर्म अच्छा नहीं लगता है।

(2) उपशम सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्त काल में जब कम से कम एक समय या अधिक से अधिक छह आवली प्रमाण काल शेष रहे, उतने काल में अनंतानुबंधी क्रोधादि चार कषाय में से किसी एक का उदय आ जाने से सम्यक्त्व की विराधना हो जाने पर सासादन गुणस्थान होता है। इसमें जीव सम्यक्त्व से तो गिर गया है किन्तु मिथ्यात्व में अभी नहीं पहुँचा है।

(3) सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से केवल सम्यक्त्वरूप परिणाम न होकर जो मिश्ररूप परिणाम होता है उसे मिश्र गुणस्थान कहते हैं।

(4) दर्शनमोहनीय और अनंतानुबंधी कषाय के उपशम आदि के होने पर जीव को जो तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप परिणाम होता है वह सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व के तीन भेद हैं– उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व और वेदक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व। दर्शनमोहनीय की तीन और अनंतानुबंधी की चार ऐसी सात प्रकृतियों के उपशम से उपशम और क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है तथा सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से वेदक सम्यक्त्व होता है।

इस गुणस्थान वाला जीव जिनेन्द्र कथित प्रवचन का श्रद्धान करता है तथा इन्द्रियों के विषय आदि से विरत नहीं हुआ है, इसलिए अविरत सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

(5) सम्यग्दृष्टि अणुव्रत आदि एकदेश व्रतरूप परिणाम को देशविरत-गुणस्थान कहते हैं। देशव्रती जीव के प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से महाव्रतरूप पूर्ण संयम नहीं होता है।

(6) प्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम से सकल संयमरूप मुनिव्रत तो हो चुके हैं किन्तु संज्वलन कषाय और नोकषाय के उदय से संयम में मल उत्पन्न करने वाला प्रमाद भी होता है। अतः इस गुणस्थान को प्रमत्तविरत कहते हैं। यह गुणस्थान दिगम्बर मुनियों के होता है।

(7) संज्वलन कषाय और नोकषाय का मंद उदय होने से संयमी मुनि के प्रमादरहित संयमभाव होता है। तब यह अप्रमत्तविरत गुणस्थान होता है। इसके दो भेद हैं– स्वस्थान अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त।

जब मुनि, शरीर और आत्मा के भेद विज्ञान में तथा ध्यान में लीन रहते हैं तब स्वस्थान अप्रमत्त होता है और जब श्रेणी के सम्मुख होते हुए ध्यान में प्रथम अधःप्रवृत्तकरणरूप परिणाम होता है तब सातिशय अप्रमत्त होता है। आजकल पंचमकाल में स्वस्थान अप्रमत्त मुनि हो सकते हैं, सातिशय अप्रमत्त परिणाम वाले नहीं हो सकते हैं।

(8) जिस समय भावों की विशुद्धि से उत्तरोत्तर अपूर्व परिणाम होते जायें अर्थात् भिन्न समयवर्ती मुनि के परिणाम विसदृश ही हों, एक समयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश भी हों, विसदृश भी हों, उसको अपूर्वकरण कहते हैं।

(9) जिस गुणस्थान में एक समयवर्ती नाना जीवों के परिणाम सदृश ही हों और भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम विसदृश ही हों, उसको अनिवृत्तिकरण कहते हैं।

अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन तीनों करणों के परिणाम प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धि लिए हुए होते हैं।

(10) अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त लोभ कषाय के उदय को अनुभव करते हुए जीव के सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान होता है।

(11) सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम होने से अत्यन्त निर्मल यथाख्यातचारित्र को धारण करने वाले मुनि के उपशांतमोह गुणस्थान होता है। इस गुणस्थान का काल समाप्त होने पर जीव मोहनीय का उदय आ जाने

से नीचे के गुणस्थानों में आ जाता है।

(12) मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे जल के सदृश निर्मल परिणाम वाले निर्ग्रंथ मुनि क्षीणकषाय नामक गुणस्थान वाले होते हैं।

(13) घातिया कर्म की 47, अघातिया कर्मों की 16 इस तरह 63 प्रकृतियों के सर्वथा नाश हो जाने से केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। उस समय अनन्त चतुष्टय और नवकेवल लब्धि प्रगट हो जाती है किन्तु योग पाया जाता है, इसलिए वे अरिहंत परमात्मा सयोग केवली जिन कहलाते हैं।

(14) सम्पूर्ण योगों से रहित, केवली भगवान अघाति कर्मों का अभाव कर मुक्त होने के सम्मुख हुये अयोगकेवली जिन कहलाते हैं। इस गुणस्थान में अरिहंत भगवान् शेष 85 प्रकृतियों को नष्ट करके सर्व कर्मरहित सिद्ध हो जाते हैं और एक समय में लोक के शिखर पर पहुँच जाते हैं।

प्रश्न—श्रेणी किसे कहते हैं?

उत्तर—जिन परिणामों से चारित्र मोहनीय की शेष 21 प्रकृतियों का क्रम से उपशम या क्षय किया जाता है उन परिणामों को श्रेणी कहते हैं। इसके दो भेद हैं—उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी। जहाँ मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का उपशम किया जाये, वह उपशम श्रेणी है। जहाँ क्षय किया जाये, वह क्षपक श्रेणी है।

आठवें से ग्यारहवें तक चार गुणस्थानों में उपशम श्रेणी होती है। इसमें चढ़ने वाला जीव नियम से नीचे गिरता है। आठवें, नवें, दशवें और बारहवें में क्षपक श्रेणी होती है। इसमें चढ़ने वाला जीव नियम से घातिया कर्मों का नाश कर केवली भगवान हो जाता है।

प्रश्नावली—(1) गुणस्थान का क्या लक्षण है? (2) सासादन, मिश्र, प्रमत्तविरत, उपशांत मोह, सयोगकेवली जिन इन गुणस्थानों के लक्षण बताओ? (3) तीसरे और पाँचवें गुणस्थान में क्या अन्तर है? (4) क्षपक श्रेणी के कौन-कौन गुणस्थान हैं? किस श्रेणी वाला जीव गिरता है? (5) क्षपक श्रेणी वाला क्यों नहीं गिरता है?

पाठ 9-कर्मबंध के भेद

कषाय सहित जीव जो कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बंध है। इसके चार भेद हैं—प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध।

कर्मों का ज्ञानादि के ढकने का स्वभाव होना प्रकृतिबंध है। कर्मों में आत्मा के साथ रहने की मर्यादा स्थितिबंध है। कर्मों में तीव्र-मंद आदि फल देने की शक्ति अनुभाग बंध है। कर्मरूप हुए पुद्गल परमाणुओं की संख्या को प्रदेश बंध कहते हैं।

विशेषार्थ—इनमें से प्रकृति और प्रदेशबंध योग से होते हैं तथा स्थिति और अनुभागबंध कषाय से होते हैं।

प्रकृतिबंध के मूल आठ भेद हैं—(1) ज्ञानावरण (2) दर्शनावरण (3) वेदनीय (4) मोहनीय (5) आयु (6) नाम (7) गोत्र (8) अन्तराय।

इन आठ कर्मों के उत्तर भेद 148 हैं अथवा असंख्यात लोक प्रमाण हैं। यहाँ 148 भेदों को बतलाते हैं—ज्ञानावरण के 5, दर्शनावरण के 9, वेदनीय के 2, मोहनीय के 28, आयु के 4, नाम के 93, गोत्र के 2 और अन्तराय के 5, ऐसे 148 उत्तर भेद हैं।

ज्ञानावरण के भेद

ज्ञानावरण के 5 भेद हैं—1. मतिज्ञानावरण 2. श्रुतज्ञानावरण 3. अवधिज्ञानावरण 4. मनःपर्ययज्ञानावरण 5. केवलज्ञानावरण।

1. मतिज्ञानावरण—जो मतिज्ञान को नहीं होने देता, उसे मतिज्ञानावरण कहते हैं।

2. श्रुतज्ञानावरण—जो शास्त्रज्ञान को नहीं होने देता, उसे श्रुतज्ञानावरण कहते हैं।

3. अवधिज्ञानावरण—जो अवधिज्ञान को नहीं होने देता, उसे अवधिज्ञानावरण कहते हैं।

4. मनःपर्ययज्ञानावरण—जो मनःपर्ययज्ञान को नहीं होने देता, उसे मनःपर्ययज्ञानावरण कहते हैं।

5. केवलज्ञानावरण—जो केवलज्ञान को नहीं होने देता, उसे केवलज्ञानावरण कहते हैं।

दर्शनावरण के भेद

दर्शनावरण के 9 भेद हैं–1. चक्षुदर्शनावरण 2. अचक्षुदर्शनावरण 3. अवधिदर्शनावरण 4. केवलदर्शनावरण 5. निद्रा 6. निद्रानिद्रा 7. प्रचला 8. प्रचलाप्रचला 9. स्त्यानगृद्धि।

1. चक्षुदर्शनावरण–जो कर्म चक्षु इन्द्रिय से होने वाले सामान्य अवलोकन को नहीं होने देता, उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

2. अचक्षुदर्शनावरण–जो चक्षु इन्द्रिय के बिना शेष चार इन्द्रिय और मन से होने वाले सामान्य अवलोकन को नहीं होने देता, उसे अचक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

3. अवधिदर्शनावरण–जिसके उदय से अवधिदर्शन का घात होता है, उसे अवधिदर्शनावरण कहते हैं।

4. केवलदर्शनावरण–जिसके उदय से केवलदर्शन का घात होता है, उसे केवलदर्शनावरण कहते हैं।

5. निद्रा–जिस कर्म के उदय से निद्रा आती है, उसे निद्रा दर्शनावरण कहते हैं।

6. निद्रानिद्रा–जिसके उदय से नींद पर नींद आती है, उसे निद्रानिद्रा कहते हैं।

7. प्रचला–जिसके उदय से प्राणी कुछ जागता है, कुछ सोता है, उसे प्रचला कहते हैं।

8. प्रचलाप्रचला–जिसके उदय से सोते समय मुख से लार बहती है और अंगोपांग भी चलते हैं, उसे प्रचलाप्रचला कहते हैं।

9. स्त्यानगृद्धि–जिसके उदय से प्राणी सोते समय नाना प्रकार के भयंकर काम कर डालता है और जागने पर कुछ मालूम नहीं रहता कि मैंने क्या किया है, उसे स्त्यानगृद्धि कहते हैं।

वेदनीय के भेद

वेदनीय के दो भेद हैं–सातावेदनीय और असातावेदनीय।

1. सातावेदनीय–जिस कर्म के उदय से शारीरिक और मानसिक अनेक प्रकार की सुख-सामग्री मिले या सुख मिले, उसे सातावेदनीय कहते हैं।

2. असातावेदनीय–जिसके उदय से दुःखदायक सामग्री या दुःख प्राप्त हो, वह असातावेदनीय है।

मोहनीय के भेद

मोहनीय कर्म के 2 भेद हैं–दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। इसमें दर्शनमोहनीय के 3 भेद हैं तथा चारित्रमोहनीय के पहले दो भेद हैं–कषायवेदनीय और अकषायवेदनीय। कषायवेदनीय के 16 भेद हैं और अकषायवेदनीय के 9 भेद हैं। ऐसे दर्शनमोह के 3 और चारित्रमोह के 25 मिलाकर 28 भेद हुए।

दर्शनमोहनीय के भेद

जो आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात करता है, उसे दर्शनमोहनीय कहते हैं। उसके तीन भेद हैं–मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व।

1. मिथ्यात्व–जिस कर्म के उदय से तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान नहीं होता, उसे मिथ्यात्व कहते हैं।

2. सम्यक्मिथ्यात्व–जिस कर्म के उदय से दही और गुड़ के मिश्रित स्वाद के समान तत्त्वों का श्रद्धान और अश्रद्धान दोनों रूप से मिश्रित भाव होता है, वह सम्यक्मिथ्यात्व है।

3. सम्यक्त्व–जिस कर्म के उदय से सम्यग्दर्शन में दोष उत्पन्न होता है, वह सम्यक्त्व प्रकृति है।

चारित्रमोहनीय के भेद

जिस कर्म के उदय से आत्मा के चारित्र गुण का घात होता है, उसे चारित्र मोहनीय कहते हैं। इसके दो भेद हैं-कषाय वेदनीय और अकषाय वेदनीय। जो आत्मा के गुण-शुभ या शुद्ध भाव को कषता है, नष्ट करता है, उसे कषायवेदनीय कहते हैं। इसके 16 भेद हैं–अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ।

अनंतानुबंधी–जो अनंत अर्थात् मिथ्यात्व के साथ-साथ बंधती है, उसे अनंतानुबंधी कहते हैं। अथवा जिसके उदय से सम्यक्त्व का घात हो, वह अनंतानुबंधी है। उसके क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार भेद हैं।

अप्रत्याख्यानावरण–जिसके उदय से एकदेशव्रत को भी धारण नहीं कर सके, उसे अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं।

प्रत्याख्यानावरण–जिसके उदय से जीव मुनियों के चारित्र को धारण नहीं कर सके, वह प्रत्याख्यानावरण है।

संज्वलन–जिसके उदय से यथाख्यातचारित्र न हो सके, उसे संज्वलन कहते हैं।

जो क्रोधादि की तरह आत्मा के गुणों का घात नहीं करे किन्तु किंचित् घात करे अथवा कषाय के साथ-साथ अपना फल देवे, वह अकषाय वेदनीय है। उसके 9 भेद हैं–हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद।

1. **हास्य**–जिसके उदय से हंसी आवे।
2. **रति**–जिसके उदय से इन्द्रिय के विषयों में राग हो।
3. **अरति**–जिसके उदय से विषयों में द्वेष हो।
4. **शोक**–जिसके उदय से शोक या चिंता हो।
5. **भय**–जिसके उदय से डर या उद्वेग हो।
6. **जुगुप्सा**–जिसके उदय से दूसरे से ग्लानि हो।
7. **स्त्रीवेद**–जिसके उदय से पुरुष से रमने की इच्छा हो।
8. **पुंवेद**–जिसके उदय से स्त्री से रमने की इच्छा हो।
9. **नपुंसकवेद**–जिसके उदय से स्त्री-पुरुष दोनों से रमने की इच्छा हो।

आयु के भेद

आयु कर्म के चार भेद हैं–नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु।

नरकायु–जिस कर्म के उदय से प्राणी नारकी के शरीर में रुका रहता है, उसे नरकायु कहते हैं। इसी तरह शेष आयु के भी लक्षण समझना चाहिए।

नामकर्म के भेद

नामकर्म के 93 भेद हैं–गति 4, जाति 5, शरीर 5, अंगोपांग 3, निर्माण 1, बंधन 5, संघात 5, संस्थान 6, संहनन 6, स्पर्श 8, रस 5, गंध 2, वर्ण 5, आनुपूर्वी 4, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक, साधारण, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति और तीर्थंकर ये 93 प्रकृतियाँ हैं।

गति–जिस कर्म के उदय से प्राणी दूसरे भव या पर्याय में जाता है, वह गति है। उसके 4 भेद हैं-नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति।

जाति–जिस कर्म के उदय से अनेक प्राणियों में अविरोधी समान

अवस्था प्राप्त होती है, उसे जाति कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं-एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पंचेन्द्रिय जाति। जिस कर्म के उदय से जीव एकेन्द्रिय जाति में पैदा हो, वह एकेन्द्रिय जाति है, इत्यादि।

शरीर–जिस कर्म के उदय से प्राणी की शरीर रचना होती है, वह शरीर है। इसके 5 भेद हैं–औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण।

1. **औदारिक**–जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर की रचना होती है। मनुष्य और तिर्यंच के स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।
2. **वैक्रियिक शरीर**–जिसके उदय से शरीर में स्थूल, सूक्ष्म, हल्का, भारी आदि अनेक प्रकार से होने की योग्यता होती है।
3. **आहारक शरीर**–आहारक ऋद्धि वाले छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तक से जो एक हाथ का पुतला निकलता है।
4. **तैजस शरीर**–जिसके उदय से शरीर में तेज होता है।
5. **कार्मण शरीर**–ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं।

अंगोपांग–जिस कर्म से अंग और उपांगों की रचना होती है, उसे अंगोपांग कहते हैं। इसके तीन भेद हैं–औदारिक शरीर अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग और आहारक शरीर अंगोपांग। दो हाथ, दो पांव, नितंब, पीठ, वक्षस्थल, और मस्तक ये आठ अंग हैं तथा अंगुलि, आँख, कान आदि उपांग हैं।

निर्माण–जिस कर्म के उदय से अंगोपांग की यथास्थान और यथा-प्रमाण रचना होती है, वह निर्माण नाम का कर्म है।

बंधन–शरीर नाम कर्म के उदय से ग्रहण किये गये पुद्गल स्कंधों का परस्पर मिलन जिस कर्म के उदय से होता है, उसे बंधन नामकर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं–औदारिक बंधन, वैक्रियिक बंधन, आहारक बंधन, तैजस बंधन और कार्मण बंधन।

संघात–जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीर के प्रदेशों का परस्पर छिद्ररहित एकमेकपना होता है, वह संघात है। उसके पाँच भेद हैं–औदारिक संघात, वैक्रियिक संघात, आहारक संघात, तैजस संघात और कार्मण संघात।

संस्थान–जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार बनता है, वह संस्थान है। इसके छः भेद हैं– समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान और हुंडकसंस्थान।

1. समचतुरस्र–जिस कर्म के उदय से शरीर की लम्बाई-चौड़ाई सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ठीक-ठीक बनी हो, उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं।

2. न्यग्रोधपरिमंडल–जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार वटवृक्ष की तरह नाभि के नीचे पतला और ऊपर मोटा हो।

3. स्वाति–जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार सर्प की बामी की तरह ऊपर पतला और नीचे मोटा हो।

4. कुब्जक–जिस कर्म के उदय से शरीर कुबड़ा हो।

5. वामन–जिस कर्म के उदय से शरीर बौना होवे।

6. हुंडकसंस्थान–जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार किसी खास शक्ल का न हो, प्रत्युत् बेडौल हो।

संहनन–जिस कर्म के उदय से हड्डियों में विशेषता हो, वह संहनन है। इसके छः भेद हैं– वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलित और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन।

1. वज्रवृषभनाराच–जिस कर्म के उदय से वृषभ (नसों की हड्डियों का बंधन), नाराच (कील), संहनन (हड्डियाँ) वज्र के समान अभेद्य हों।

2. वज्रनाराच–जिस कर्म के उदय से वज्र की हड्डियाँ और वज्र की कीली हों परन्तु नसों में जाल वज्र के समान नहीं हो।

3. नाराच–जिस कर्म के उदय से हड्डियों तथा संधियों में कीलें तो हों परन्तु वज्र के समान कठोर न हों और नसाजाल भी वज्रवत् कठोर न हो।

4. अर्धनाराच–जिस कर्म के उदय से हड्डियों की कीलियाँ अर्धकीलित हों, एक तरफ कीलें हों, दूसरी तरफ न हों।

5. कीलित–जिस कर्म के उदय से हड्डियाँ परस्पर कीलित हों।

6. असंप्राप्तसृपाटिका–जिस कर्म के उदय से हड्डियों की संधियाँ नसों से बंधी होती हैं परन्तु परस्पर में कीलित नहीं होती हैं।

स्पर्श–जिस कर्म के उदय से शरीर में स्पर्श हो। इसके 8 भेद हैं– कोमल, कठोर, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष।

रस–जिस कर्म के उदय से शरीर में रस हो। इसके पाँच भेद हैं–तिक्त (चरपरा), कटुक (कडुवा), कषाय (कषायला), आम्ल (खट्टा) और मधुर (मीठा)।

गंध–जिस कर्म के उदय से शरीर में गंध हो। उसके दो भेद हैं– सुगंध और दुर्गंध।

वर्ण–जिस कर्म के उदय से शरीर में रूप हो। उसके 5 भेद हैं– नील, शुक्ल, कृष्ण, रक्त और पीत।

आनुपूर्व्य–जिस कर्म के उदय से अन्य गति को जाते हुए प्राणी का आकार विग्रहगति में पूर्व शरीर के आकार का रहता है। इसके 4 भेद हैं– नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगत्यानुपूर्व्य।

नरकगत्यानुपूर्व्य–जिस समय कोई मनुष्य मरकर नरक गति की ओर जाता है, वहाँ पहुंचने तक बीच में (विग्रह गति से) उसके आत्मा के प्रदेशों का पूर्ण शरीर का आकार बना रहता है, उसे नरकगत्यानुपूर्व्य कहते हैं। ऐसे ही शेष सभी में समझना।

अगुरुलघु–जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर लोहे के गोले की तरह भारी और आक की रुई की तरह हल्का नहीं होवे, वह अगुरुलघु है।

उपघात–जिस कर्म के उदय से अपने ही घातक अंगोपांग होते हैं।

परघात–जिस कर्म के उदय से पर के घातक अंगोपांग होते हैं।

आतप–जिस कर्म के उदय से आतपकारी शरीर होता है। इसका उदय सूर्य के विमान में स्थित बादर पृथ्वीकायिक जीवों के होता है।

उद्योत–जिस कर्म के उदय से उद्योतरूप शरीर हो। इसका उदय चन्द्रमा के विमान में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के तथा जुगनू आदि जीवों के होता है।

विहायोगति–जिस कर्म के उदय से आकाश में गमन होता है, इसके 2 भेद हैं– प्रशस्तविहायोगति और अप्रशस्तविहायोगति।

प्रत्येक शरीर–जिस कर्म के उदय से एक शरीर का स्वामी एक ही जीव होता है।

साधारण–जिस कर्म के उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी होते हैं।

त्रस–जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रिय आदि जीवों में जन्म होता है।

स्थावर–जिस कर्म के उदय से एकेन्द्रिय जीवों में जन्म होता है।

सुभग–जिस कर्म के उदय से दूसरों को अपने से प्रीति होती है।

दुर्भग–जिस कर्म के उदय से रूपादि गुणों से युक्त होने पर भी दूसरे जीवों को अप्रीति होती है।

सुस्वर–जिस कर्म के उदय से अच्छा स्वर हो।

दुस्वर–जिस कर्म के उदय से खराब स्वर हो।

शुभ–जिस कर्म के उदय से मस्तक आदि अवयव सुन्दर मालूम हों।

अशुभ–जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव मनोहर नहीं मालूम हों।

सूक्ष्म–जिस कर्म के उदय से दूसरों को नहीं रोकने वाला और दूसरों से नहीं रुकने वाला शरीर प्राप्त हो।

बादर–जिस कर्म से दूसरों को रोकने और दूसरों से रुकने वाला शरीर प्राप्त हो।

पर्याप्ति–जिस कर्म के उदय से अपने योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जावें।

अपर्याप्ति–जिस कर्म के उदय से पर्याप्तियों की पूर्णता न हो, बीच में ही मरण हो जावे।

स्थिर–जिस कर्म के उदय से शरीर के रस आदि धातु तथा वात-पित्तादि उपधातु अपने-अपने स्थान में ठीक रहें। अनेक व्रत-उपवास आदि से भी शिथिलता न आवे।

अस्थिर–जिस कर्म के उदय से शरीर की धातु-उपधातुएँ अपने स्थान में स्थिर नहीं रहें, किंचित् उपवास आदि से शरीर अस्वस्थ हो जावे।

आदेय–जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रभा रहती है।

अनादेय–जिस कर्म के उदय से शरीर में कांति नहीं होती है।

यशःकीर्ति–जिस कर्म के उदय से अपना पुण्य, गुण जगत् में प्रकट हो अर्थात् संसार में अपनी तारीफ होवे।

अयशःकीर्ति–जिस कर्म के उदय से जीव की निंदा होती है।

तीर्थंकरप्रकृति नामकर्म–जिस कर्म के उदय से तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है।

गोत्र कर्म के भेद

गोत्र कर्म के 2 भेद हैं–उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

उच्च गोत्र–जिसके उदय से जीव लोकमान्य उच्चकुल में जन्म लेवे, वह उच्च गोत्र है।

नीच गोत्र–जिसके उदय से जीव लोकनिंद्य नीचकुल में जन्म लेवे, वह नीच गोत्र है।

अन्तराय कर्म के भेद

अन्तराय कर्म के 5 भेद हैं–दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय।

1. दानांतराय–जिस कर्म के उदय से दान की इच्छा करता हुआ भी दान नहीं दे सके।

2. लाभांतराय–जिस कर्म के उदय से लाभ की इच्छा होते हुए भी लाभ की प्राप्ति न हो सके।

3. भोगांतराय–जिस कर्म के उदय से अन्नादि भोगरूप वस्तु को भोगना चाहता हुआ भी भोग न सके।

4. उपभोगांतराय–जिसके उदय से वस्त्रादि उपभोग्य वस्तु को उपभोग करने का इच्छुक भी उपभोग न कर सके।

5. वीर्यांतराय–जिस कर्म के उदय से अपनी शक्ति प्रकट करना चाहता हुआ भी प्रकट न कर सके, सामर्थ्यहीन, कायर, अनुत्साहित ही रहे।

इस प्रकार 148 प्रकृतियों का वर्णन हुआ।

पुण्य और पाप प्रकृतियाँ

पुण्य प्रकृतियाँ[1]–सातावेदनीय, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, शरीर 5, बंधन 5, संघात 5, अंगोपांग 3, शुभ स्पर्श, रस गंध वर्ण के 20, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, अगुरुलघु, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, बादर, सुभग, शुभ, सुस्वर, पर्याप्त, स्थिर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर ये 68 पुण्य प्रकृतियाँ हैं।

इनसे बची हुई शेष 80 और अशुभ स्पर्श-रस-गंध-वर्ण की 20 ऐसे 100 पाप प्रकृतियाँ हैं। स्पर्शादि के 20 भेद जब शुभरूप हैं, तब पुण्य में और अशुभरूप हैं, तब पाप में शामिल होते हैं। चूँकि ये दोनों रूप माने गये हैं।

कर्म की बंध, उदय और सत्त्व ऐसी तीन अवस्थाएं होती हैं।

1. बंध–कर्मों का आत्मा से सम्बन्ध होना बंध है।

1. गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) गाथा 41-42।

2. उदय–स्थिति को पूरी करके कर्म के फल देने को उदय कहते हैं।

3. सत्त्व–आत्मा से पुद्गल का कर्मरूप रहना सत्त्व है।

प्रश्नावली–(1) बंध के कितने भेद हैं? (2) स्थिति और अनुभाग बंध का लक्षण बताओ। (3) प्रकृति बंध के मूल भेद और उत्तर भेद कितने हैं? (4) दर्शनावरण केकितने भेद हैं? (5) पाँचों निद्राओं के लक्षण बताओ? (6) साता वेदनीय का लक्षण बताओ? (7) मोहनीय के मूल और उत्तर भेदों के नाम बताओ? (8) नव नोकषाय के लक्षण बताओ? (9) मनुष्यायुऔर देवायु में क्या अन्तर है? (10) नाम कर्म की कुल प्रकृतियों के नाम बताओ? (11) अंगोपांग, निर्माण, संघात, संहनन के भेद और लक्षण बताओ? (12) आनुपूर्व, उपघात, परघात, साधारण, स्थिर, यशकीर्ति और तीर्थंकर इन प्रकृतियों के लक्षण बताओ? (13) पुण्य और पाप प्रकृति की कुल संख्या कितनी है? (14) पुण्य प्रकृतियों के नाम बताओ? (15) बंध, उदय और सत्त्व का लक्षण बताओ? (16) तुम्हें कर्मों के बंध, उदय और सत्त्व में से क्या-क्या लेना है?

पाठ 10-षट् आवश्यक क्रिया

जिनको अवश्य ही करना होता है, वे आवश्यक क्रियाएँ कहलाती हैं। उनके छः भेद हैं–देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान।

1. देवपूजा–जिनेन्द्र भगवान के चरणों की पूजा संपूर्ण दुःखों का नाश करने वाली है और सभी मनोरथों को सफल करने वाली है अतः श्रावक को प्रतिदिन देवपूजा अवश्य करनी चाहिए।

पूजा की विधि–धुले हुए बिना किसी से स्पर्शित, शुद्ध वस्त्र (धोती दुपट्टा) धारण कर शुद्ध धुली हुई सामग्री (अष्टद्रव्य) को हाथ में लेकर मंदिर पहुँचकर दर्शन करके पहले ईर्यापथ शुद्धि करें। पुनः सिद्धभक्ति करके अपने ललाट पर चंदन से तिलक लगाकर अभिषेक पाठ में कही हुई विधि के अनुसार अभिषेक करें। अनन्तर थाली के मध्य में स्वस्तिक बनाकर निम्न अंकों को लिखें–

नीचे ३ (रत्नत्रय का सूचक), बाजू में २४ (२४ तीर्थंकरों का), ऊपर ५ (पंचपरमेष्ठी का) एवं दायीं तरफ २ (चारणमुनि का सूचक है।)

इसका श्लोक– **रयणत्तयं च वंदे, चउवीसजिणं च सव्वदा वंदे।**
पंचगुरूणां वंदे, चारणचरणं सदा वंदे।।

इनके ऊपर बंधी मुट्ठी से पाँच परमेष्ठी के 5 पुंज, चार अनुयोग के 4 पुंज और रत्नत्रय के 3 पुंज रखना चाहिए। पुनः पूजा प्रारंभ करना चाहिए। सबसे पहले स्थापना की जाती है जो कि दोनों हाथों में पुष्पांजलि लेकर क्षेपण करते हुए करना चाहिए। संक्षेप में मंत्रों द्वारा निम्नानुसार पूजन विधि बताई जा रही है। पूजन करने वालों को छपी हुई पूजन पुस्तकों में स्वरुचि अनुसार भक्तिभाव से पूजन करना चाहिए। समयाभाव में केवल मंत्र बोलकर भी पूजा की जा सकती है।

स्थापना एवं अष्टद्रव्य से पूजन–

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणं।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

(झारी से जल चढ़ावें)

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

(अनामिका अंगुली से चंदन चढ़ावें)

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

(बंधी मुट्ठी से अक्षत चढ़ावें)

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोनों हाथों से पुष्प चढ़ावें)

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(रकेबी से नैवेद्य चढ़ावें)

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

(आरती उतारें)

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

(अग्नि में धूप खेवें)

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

(रकेबी से फल चढ़ावें)

उदक चंदनतंदुलपुष्पकैश्चरु सुदीपसुधूप फलार्घ्यकैः।
धवल मंगलगानरवाकुलेर्जिनगृहे जिनराजमहं यजे।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(रकेबी से अर्घ्य चढ़ावें)

पुनः 'शांतये शांतिधारा' बोलकर झारी से या कलश से शांतिधारा देवें और 'परिपुष्पांजलिः' बोलकर पुष्पांजलि अर्पण करें। अनंतर जयमाला बोलकर अर्घ्य चढ़ा देवें।

पूजन के अनंतर किसी भी मंत्र को 108 बार जपना चाहिए अर्थात् एक माला करनी चाहिए। ॐ एक अक्षर के मंत्र में पंचपरमेष्ठी शामिल हैं। अरिहंत का 'अ', सिद्ध अशरीरी का 'अ' सन्धि होकर अ+अ=आ बना। आचार्य का आ सन्धि होकर आ+आ=आ रहा। उपाध्याय का 'उ' सन्धि होकर आ+उ=ओ बना। साधु–मुनि का म् लेकर ओम् बन गया। ऐसे ॐ सिद्ध, ॐ ह्रीं नमः, असिआउसा, अरिहंत सिद्ध, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, णमो अरिहंताणं आदि मंत्र हैं। पैंतीस अक्षर वाला णमोकार मंत्र है। ये मंत्र बीज के समान बहुत फल देने वाले हैं।

पुनः आरती करके शांति पाठ और विसर्जन करना चाहिए।

विसर्जन का मंत्र–ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधु-जिनधर्मजिनागम-जिनचैत्यचैत्यालयादि-सर्वदेवाः स्वस्थानं गच्छत जः जः।

2. गुरुपास्ति–जिनेन्द्र भगवान की पूजा के बाद निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनियों के पास जाकर उन्हें भक्ति से नमोस्तु करके उनकी स्तुति करके अष्टद्रव्य से पूर्ववत् पूजा करनी चाहिए। उनके मुख से धर्मोपदेश सुनना चाहिए। यदि अष्टद्रव्य से पूजा न कर सकें तो अक्षत, फलादि चढ़ाकर नमस्कार करना चाहिए।

3. स्वाध्याय–अपनी बुद्धि के अनुसार जैन शास्त्रों का पढ़ना या पढ़ाना स्वाध्याय कहलाता है।

4. संयम–छहकाय के जीवों की दया करना एवं पाँच इन्द्रिय और मन को वश करना संयम है। श्रावक अपनी योग्यता के अनुसार त्रस जीवों की दया करते हुए व्यर्थ में स्थावर जीवों का वध भी नहीं करें और यथाशक्य अपने इन्द्रिय तथा मन पर नियंत्रण करें।

5. तप–अपनी शक्ति के अनुसार अनशन, ऊनोदर आदि बारह प्रकार के तपों को भी धारण करें। नंदीश्वर के आठ दिन में उपवास या एकाशन करना, अष्टमी चतुर्दशी के दिन उपवास या एकाशन आदि तथा कर्मदहन उपवास आदि सभी व्रत तप में शामिल हैं।

6. दान–गृहस्थ की 6 क्रियाओं में यह दान महाक्रिया कहलाती है। आगे इसका विशेष वर्णन किया जायेगा।

आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है कि **दाणं पूजा मुक्खो, सावय धम्मो ण सावया तेण विणा** अर्थात् श्रावक के धर्म में दान और पूजा ये दो क्रियाएँ मुख्य हैं। इनके बिना श्रावक नहीं हो सकता है।

प्रश्नावली–(1) आवश्यक क्रियाएं कितनी हैं? (2) स्वस्तिक के चारों तरफ कौन-कौन से अंक लिखे जाते हैं और उनका क्या मतलब है? (3) स्थापना कैसे करना चाहिए और क्या-क्या मंत्र बोलना चाहिए? (4) जल, अक्षत, पुष्प, दीप और फल इनके चढ़ाने की क्या विधि है? (5) ॐ शब्द कैसे बनता है? (6) स्वाध्याय, तप और दान इन आवश्यक क्रियाओं के लक्षणबताओ? (7) श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने श्रावक के लिए किन क्रियाओं को मुख्य कहा है?

पाठ 11–दान का लक्षण

स्व और पर के अनुग्रह के लिए अपना धन आदि वस्तु का देना दान कहलाता है। अर्थात् गृहत्यागी, तपस्वी, चारित्रादि गुणों के भण्डार ऐसे त्यागियों को अपनी शक्ति के अनुसार शुद्ध आहार, औषधि आदि देना दान है। घर के आरंभ से जो पाप उत्पन्न होते हैं, गृहत्यागी साधुओं को आहार दान आदि देने से वे पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे रुधिर से गंदे वस्त्र को जल धो डालता है। उत्तम आदि पात्रों में दिया गया यह दान बड़ के बीज के समान अनंतगुणा होकर फलता है।

दान के चार भेद हैं–आहारदान, औषधिदान, शास्त्रदान और अभयदान। जिनको दान दिया जाता है, उन्हें पात्र कहते हैं। उनके भी तीन भेद हैं– सत्पात्र, कुपात्र और अपात्र। सत्पात्र के भी तीन भेद हैं–

उत्तम सत्पात्र–नग्न दिगम्बर सच्चे साधु उत्तम पात्र हैं।

मध्यम सत्पात्र–आर्यिका, क्षुल्लक, ऐलक तथा प्रतिमाधारी श्रावक मध्यम पात्र हैं।

जघन्य सत्पात्र–व्रतरहित सम्यग्दृष्टि श्रावक जघन्य पात्र कहलाते हैं।

सम्यक्त्वरहित मिथ्या तप करने वाले कुपात्र एवं सम्यक्त्व तथा व्रतरहित जीव अपात्र कहलाते हैं। कुपात्र के दान से कुभोगभूमि मिलती है और अपात्र में दिया हुआ दान व्यर्थ चला जाता है।

यदि सम्यग्दृष्टि श्रावक, श्राविकाएँ इन सत्पात्रों को आहार दान देते हैं, तो वे स्वर्ग, मोक्षफल को प्राप्त करते हैं। यदि भद्र जीव अर्थात् भाव मिथ्यादृष्टि श्रावक इन्हें दान देते हैं तो क्रम से उत्तम पात्र के दान से उत्तम भोगभूमि, मध्यम पात्र के दान से मध्यम भोगभूमि और जघन्य पात्र के दान से जघन्य भोगभूमि को प्राप्त करते हैं।

1. आहार दान का लक्षण और फल

श्रद्धा, भक्ति, संतोष, विवेक, अलोभ, क्षमा और सत्य, ये दाता के सात गुण माने गये हैं।

नवधा भक्ति–आये हुए साधुओं को देखकर उनका पड़गाहन करना, उच्च आसन विराजमान करना, पाद प्रक्षाल करना, पूजन करना, नमस्कार करना, मन, वचन और काय की शुद्धि कहना तथा भोजन की शुद्धि कहना नवधा भक्ति कहलाती है। अर्थात् मुनिराज, आर्यिका आदि को आहार के समय आते हुए देखकर धुले हुए धोती और दुपट्टा ऐसे दो वस्त्र धारण कर हाथ में कलश, फल आदि लेकर दरवाजे के पास खड़े होकर बोलना, हे स्वामिन्! नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, इसे पड़गाहन कहते हैं। नवधा भक्ति के अनंतर उनके हाथ की अंजुलि में शुद्ध प्रासुक आहार देना चाहिए।

उदाहरण–

(अकृतपुण्य)

भोगवती नगरी के राजा कामवृष्टि की रानी मिष्टदाना के गर्भ में पापी बालक के आते ही राजा की मृत्यु हो गई और राजा के नौकर सुकृतपुण्य के हाथ में राज्य चला गया। माता ने बालक को पुण्यहीन समझकर उसका नाम 'अकृतपुण्य' रख दिया और परायी मजदूरी करके उसका पालन किया।

किसी समय बालक सुकृतपुण्य के खेत पर काम करने के लिए चला गया। राजा ने उसे अपने स्वामी का पुत्र समझकर बहुत कुछ दीनारें दीं किन्तु उसके हाथ में आते ही अंगारे हो गईं। तब उसको उसकी इच्छानुसार चने दे दिये। माता ने इस घटना से देश छोड़ दिया और सीमवाक गांव के बलभद्र नामक जैन श्रावक के यहाँ भोजन बनाने का काम करने लगी। सेठ के बालकों को खीर खाते देखकर वह अकृतपुण्य भी खीर मांगा करता था। तब एक दिन सेठ के लड़कों ने बालक को थप्पड़ों से मारा। सेठ ने उक्त घटना को जानकर बहन मिष्टदाना को खीर बनाने के लिए सारा सामान दे दिया। माता ने खीर बनाकर बालक से कहा–बेटा! मैं पानी भरने जाती हूँ, इसी बीच में यदि कोई मुनिराज आवें तो उन्हें रोक लेना, मैं मुनिराज को आहार देकर तुझे खीर खिलाऊँगी। भाग्य से सुव्रत मुनिराज उधर आ गये। बालक ने कहा–मुनिराज! आप रुको, मेरी माँ ने खीर बनाई है, आपको आहार देंगी। मुनिराज के न रुकने से बालक ने जाकर उनके पैर पकड़ लिये और बोला–'देखूँ अब कैसे जाओगे?'

उधर माता ने आकर पड़गाहन करके विधिवत् आहार दिया। बालक आहार देख-देखकर बहुत प्रसन्न हो रहा था। मुनिराज अक्षीण ऋद्धिधारी थे। उस दिन खीर का भोजन समाप्त ही नहीं हुआ। तब मिष्टदाना ने सपरिवार सेठ जी को, अनंतर सारे गाँव को जिमा दिया, फिर भी खीर ज्यों की त्यों रही।

अगले दिन बालक वन में गाय चराने गया था। वहाँ उसने मुनि का उपदेश सुना। रात्रि में व्याघ्र ने उसे खा लिया। आहार देखने के प्रभाव से वह अकृतपुण्य मरकर स्वर्ग में देव हो गया।

पुनः उज्जयिनी नगरी के सेठ धनपाल की पत्नी प्रभावती के धन्य कुमार नाम का पुण्यशाली पुत्र हो गया। जन्म के बाद नाल गाड़ने को जमीन खोदते ही धन का घड़ा निकला। धन्यकुमार जहाँ-जहाँ हाथ लगाता, वहाँ धन ही धन हो जाता था। आगे चलकर यह धन्यकुमार नवनिधि का स्वामी

हो गया और असीम धन वैभव को भोगकर पुनः दीक्षा लेकर अंत में सर्वार्थसिद्धि में अहमिंद्र पद पाया। यह है आहार दान का प्रभाव! जिससे महापापी अकृतपुण्य धन्य- कुमार हो गया।

2. औषधि दान का लक्षण और फल

उत्तम आदि पात्रों को किसी प्रकार का रोग हो जाने पर शुद्ध प्रासुक औषधि का दान देना औषधि दान है। यह दान भव-भव में नीरोग शरीर प्रदान करके अंत में मोक्ष प्रदान करने वाला है। प्राणियों के कलेवर आदि से बनी हुई अशुद्ध औषधियों के दान से पुण्य के बजाय पाप बंध हो जाता है।

उदाहरण –

(वृषभसेना)

किसी समय मुनिदत्त योगिराज महल के पास एक गड्ढे में ध्यान में लीन थे। नौकरानी ने उन्हें हटाना चाहा। जब वे नहीं उठे, तब उसने सारा कचरा इकट्ठा करके मुनि पर डाल दिया। प्रातः राजा ने वहाँ से मुनि को निकालकर विनय से सेवा की। उस समय नौकरानी नागश्री ने भी पश्चात्ताप करके मुनि

के कष्ट को दूर करने हेतु उनकी औषधि की और मुनि की भरपूर सेवा की। अंत में मरकर यह वृषभसेना हुई। जिसके स्नान के जल से सभी प्रकार के रोग-विष नष्ट हो जाते थे। आगे चलकर वह राजा उग्रसेन की पट्टरानी हो गई। किसी समय रानी के शील में आशंका होने से राजा ने उसे समुद्र में गिरवा दिया किन्तु रानी के शील के माहात्म्य से देवों ने सिंहासन पर बैठाकर उसकी पूजा की।

देखो! नौकरानी ने जो मुनि पर उपसर्ग किये थे उसके फलस्वरूप उसे रानी अवस्था में भी कलंकित होना पड़ा और जो उसने मुनि की सेवा करके औषधिदान दिया था उसके प्रभाव से उसे ऐसे सर्वोषधि ऋद्धि प्राप्त हुई कि जिसके प्रभाव से उसके स्नान के जल से सभी के कुष्ट आदि भयंकर रोग और विष आदि दूर हो जाते थे। इसलिए औषधिदान अवश्य देना चाहिए।

3. शास्त्रदान का लक्षण और फल

जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित और गणधर आदि मुनियों द्वारा रचित शास्त्र को सच्चे शास्त्र कहते हैं। ऐसे आचार्यप्रणीत निर्दोष आगम-ग्रंथों को मुद्रण कराकर उत्तम पात्रों को देना या विद्यालय खोलना, धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था करना आदि शास्त्रदान या ज्ञानदान कहलाता है। इस ज्ञानदान के फल से निश्चित केवलज्ञान प्राप्त होता है।

उदाहरण –

(कौंडेश मुनिराज)

कुरुमरी गाँव के एक ग्वाले ने एक बार जंगल में वृक्ष की कोटर में एक जैन ग्रंथ देखा। उसे ले जाकर उसकी खूब पूजा करने लगा। एक दिन मुनिराज को उसने वह ग्रंथ दान में दे दिया। वह ग्वाला मरकर उसी गाँव के चौधरी का पुत्र हो गया। एक दिन उन्हीं मुनि को देखकर जातिस्मरण हो जाने से उन्हीं से दीक्षित होकर मुनि हो गया। कालान्तर में वह जीव राजा कौंडेश हो गया। राज्य सुखों को भोगकर राजा ने मुनि दीक्षा ले ली। ग्वाले के जन्म में शास्त्र दान किया था, उसके प्रभाव से वे मुनिराज थोड़े ही दिनों में द्वादशांग के पारगामी श्रुतकेवली हो गये। वे केवली होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। इसलिए ज्ञानदान सदा ही देना चाहिए।

4. अभयदान का लक्षण और फल

उत्तम आदि पात्रों को धर्मानुकूल वसतिका में ठहराना अथवा नयी वसति बनवाकर साधुओं के लिए सुविधा कराना वसतिदान या अभयदान है। इस दान के प्रभाव से प्राणी निर्भय होकर मोक्षमार्ग के विघ्नों को दूर करके निर्भय मोक्षपद प्राप्त कर लेते हैं।

उदाहरण –

(सूकर)

एक गाँव में एक कुम्हार और नाई ने मिलकर एक धर्मशाला बनवाई। कुम्हार ने एक दिन एक मुनिराज को लाकर धर्मशाला में ठहरा दिया। तब नाई ने दूसरे दिन मुनि को निकालकर एक सन्यासी को लाकर ठहरा दिया। इस निमित्त से दोनों लड़कर मरे और कुम्हार का जीव सूकर हो गया तथा नाई का जीव व्याघ्र हो गया। एक बार जंगल की गुफा में मुनिराज विराजमान थे। पूर्व संस्कार से वह व्याघ्र उन्हें खाने को आया और सूकर ने उन्हें बचाना चाहा। दोनों लड़ते हुए मर गये। सूकर के भाव मुनिरक्षा के थे अतः वह मरकर देवगति को प्राप्त हो गया और व्याघ्र हिंसा के भाव से मरकर नरक में चला गया।

देखो! वसतिदान के माहात्म्य से सूकर ने स्वर्ग प्राप्त कर लिया।

विशेष—समंतभद्र स्वामी ने ज्ञानदान (शास्त्रदान) की जगह उपकरण दान और अभयदान की जगह आवासदान ऐसा कहा है। अतः इस उपकरण दान में मुनि-आर्यिका आदि को पिच्छी-कमण्डलु देना, आर्यिका-क्षुल्लिका को साड़ी, ऐलक-क्षुल्लक को कोपीन-चादर आदि देना तथा लेखनी, स्याही, कागज आदि देना भी उपकरणदान कहलाता है।

अन्य ग्रंथों में दान के दानदत्ति, दयादत्ति, समदत्ति और अन्वयदत्ति ऐसे भी चार भेद किये गये हैं। उपर्युक्त विधि से पात्रों को चार प्रकार का दान देना सो दानदत्ति है।

दीन, दुःखी, अंधे, लंगड़े, रोगी आदि को करुणापूर्वक भोजन, वस्त्र औषधि आदि दान देना दयादत्ति है।

अपने समान श्रावकों को कन्या, भूमि, सुवर्ण आदि देना समदत्ति है। अपने पुत्र को घर का भार सौंपकर आप निश्चिन्त हो धर्माराधन करना यह अन्वयदत्ति है।

प्रश्नावली—(1) दान का क्या लक्षण है? (2) पात्र के कितने भेद हैं? (3) नवधा भक्ति के नाम और लक्षण बताओ? (4) अकृतपुण्य और सुकृतपुण्य कौन-कौन थे? (5)अक्षीणऋद्धि का क्या फल है? (6) वृषभसेना ने पूर्व जन्म में क्या-क्या पुण्य किया था जिससे औषधि ऋद्धि हुई? (7) शास्त्रदान का क्या फल है? (8) अभयदान का लक्षण बताओ? (9) उपकरणदान में क्या-क्या दे सकते हैं? (10) सूकर और व्याघ्र कौन थे और मरकर कहाँ गये? (11) दानदत्ति और दयादत्ति में क्या अन्तर है?

पाठ 12-चतुर्णिकाय देव

त्रिशला—माताजी! आज शास्त्र में पढ़ा है कि चतुर्निकाय के देव भगवान की भक्ति में लीन रहते हैं, वे कौन हैं और कहाँ रहते हैं?

आर्यिका—पुण्यरूप देवगति नामकर्म के उदय से जो देवपर्याय को प्राप्त करते हैं उन्हें देव कहते हैं। इनके चार भेद हैं– भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

पहली रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भेद हैं– खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग। इनमें नीचे के अब्बहुलभाग में तो पहला नरक है। ऊपर खरभाग और पंकभाग में भवनवासी तथा व्यंतरवासी देवों के निवास हैं। व्यंतर देवों के निवास स्थान मध्यलोक में भी बहुत जगह हैं।

खरभाग के ऊपर चित्रा पृथ्वी पर मध्यलोक बना हुआ है।

इस पृथ्वी से 790 योजन की ऊँचाई पर (सूर्य, चन्द्र, तारा आदि) ज्योतिषी देवों के विमान हैं।

एक लाख चालीस योजन ऊँचा सुमेरुपर्वत है। उसकी ऊँचाई के बाद सौधर्म आदि स्वर्ग हैं। वहाँ वैमानिक देव रहते हैं। ये अपनी-अपनी विक्रिया शक्ति के अनुसार सभी जगह आया-जाया करते हैं। तीर्थंकर भगवान के पाँचों कल्याणकों में चारों प्रकार के देव आते हैं। सभी इन्द्र भी आते हैं।

त्रिशला—माताजी! इन्द्र कितने हैं?

आर्यिका—इन्द्र सौ होते हैं। भवनवासी के 40, व्यंतर देवों के 32, कल्पवासी देवों के 24, ज्योतिष देवों के 2 (चन्द्र और सूर्य), मनुष्य के 1 (चक्रवर्ती) और पशुओं में 1 (सिंह) ऐसे 100 इन्द्रों से पूजित होने से अर्हंतदेव, देवाधिदेव और महादेव कहलाते हैं।

सभी देव अवधिज्ञानी होते हैं। विक्रिया से अनेक शरीर बना लेते हैं। सागरोपम तक की आयु भोगने वाले हैं। बहुत ही सुखी हैं। बहुत दिन बाद भोजन की इच्छा होने से इनके कंठ से अमृत झरता है, उससे तृप्त हो जाते हैं। ये भोजन आदि नहीं करते हैं, फिर भी संसार में भ्रमण करने से संसारी ही हैं।

प्रश्नावली—(1) देवों के चार भेद कौन-कौन से हैं? (2) व्यंतरवासी देव कहाँ रहते हैं? (3) ज्योतिर्वासी देव यहाँ से कितनी ऊँचाई पर हैं? (4) चारों प्रकार के देव मिलकर कब आते हैं? (5) इन्द्र कितने हैं? (6) देवों में क्या-क्या विशेषताएँ होती हैं?

पाठ 13-जीवसमास आदि

जिनके द्वारा अनेक जीव संग्रह किये जायें, उन्हें जीवसमास कहते हैं। जीवसमास के चौदह भेद हैं–एकेन्द्रिय के बादर और सूक्ष्म ऐसे दो भेद, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के सैनी-असैनी ऐसे दो भेद, इस प्रकार सात भेद हो जाते हैं। इन्हें पर्याप्त–अपर्याप्त ऐसे दो से गुणा करने पर जीवसमास के चौदह भेद हो जाते हैं।

विशेष–एकेन्द्रिय के पृथ्वी आदि पाँचों भेदों में बादर और सूक्ष्म भेद पाये जाते हैं। बाकी के सभी त्रस जीव बादर ही होते हैं।

बादर नामकर्म के उदय से जीव बादर होते हैं। जो शरीर दूसरे को रोकने वाला हो अथवा जो स्वयं दूसरे से रुके, उसको बादर कहते हैं। दिखने वाले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये सब बादर जीव के शरीर हैं।

सूक्ष्म नामकर्म के उदय से सूक्ष्म जीव होते हैं। जो शरीर दूसरे को न तो रोके और न स्वयं दूसरे से रुके, उसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं। सूक्ष्म जीव तीन लोक में सर्वत्र ठसाठस भरे हुए हैं जैसे कि तिल में तेल भरा हुआ है। बादर जीव आधार के बिना नहीं रहते हैं किन्तु सूक्ष्म जीव सर्वत्र निराधार हैं।

योनि

जन्म लेने के आधारस्थान को योनि कहते हैं। उसके दो भेद हैं-आकारयोनि और गुणयोनि।

आकारयोनि के तीन भेद हैं–शंखावर्त, कूर्मोन्नत और वंशपत्र।

शंखावर्त योनि में गर्भ नहीं रहता है। कूर्मोन्नत योनि से तीर्थंकर आदि महापुरुष और वंशपत्र से साधारण पुरुष आदि जन्म लेते हैं।

गुणयोनि के नव भेद हैं–सचित्त, शीत, संवृत, अचित्त, उष्ण, विवृत्त, सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृत-विवृत्। गुणयोनि के विस्तार से चौरासी लाख भेद भी होते हैं। नित्य निगोद, इतरनिगोद, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इनमें से प्रत्येक की सात-सात लाख। प्रत्येक वनस्पति की दस लाख, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय इनमें से प्रत्येक की दो-दो लाख। देव, नारकी, पंचेन्द्रिय, तिर्यंच इनमें से प्रत्येक की चार-चार लाख और मनुष्य की 14 लाख, ऐसे सब मिलाकर चौरासी लाख योनियाँ होती हैं। इन 84 लाख

योनियों में संसारी जीव अनादिकाल से चक्कर लगा रहे हैं। जब वे सच्चे जैनधर्म को ग्रहण कर लेते हैं, तब 84 के चक्कर से छूट जाते हैं।

जन्म के भेद

एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण करना जन्म कहलाता है। जन्म के तीन भेद हैं–सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद।

1. माता-पिता के रज-वीर्य के बिना ही शरीर योग्य पुद्गल परमाणुओं द्वारा शरीर की रचना हो जाना सम्मूर्च्छन जन्म है।

2. माता के गर्भ में रज और वीर्य के मिलने से जो शरीर की रचना होती है, उसे गर्भ जन्म कहते हैं।

3. माता-पिता के रजोवीर्य के बिना ही निश्चित स्थान पर पुद्गल परमाणुओं से शरीर बन जाना उपपाद जन्म है।

प्रश्न–किन जीवों के कौन सा जन्म होता है?

उत्तर–देव और नारकी के उपपाद जन्म होता है। एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय जीव तक सम्मूर्च्छन ही होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में कुछ सम्मूर्च्छन होते हैं, कुछ गर्भ जन्म वाले होते हैं। मनुष्य गर्भ जन्म वाले होते हैं किन्तु लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य सम्मूर्च्छन होते हैं, ये दिखते नहीं हैं।

गर्भ जन्म के तीन भेद हैं–जरायुज, अंडज और पोत।

जरायुज–जन्म के समय शरीर पर रुधिर तथा मांस की खोल सी लिपटी रहती है उसे जरायु या जेर कहते हैं। उससे जो भी उत्पन्न होते हैं वे जरायुज हैं। जैसे–गाय, भैंस, मनुष्य आदि।

अंडज–जो जीव अण्डे से उत्पन्न हों, वे अण्डज हैं। जैसे–कबूतर, चिड़िया आदि।

पोत–पैदा होते समय जिनके शरीर पर कोई आवरण नहीं रहता है, जो जन्मते ही चलने फिरने लगते हैं, वे पोत जन्म वाले हैं। जैसे–हरिण, सिंह आदि।

अवगाहना

शरीर की ऊँचाई को अवगाहना कहते हैं। एकेन्द्रिय में कमल की कुछ अधिक एक हजार योजन। द्वीन्द्रिय में शंख की बारह योजन, तीन इन्द्रिय में चींटी की तीन कोश, चार इन्द्रिय में भ्रमर की एक योजन और पंचेन्द्रिय में महामत्स्य के शरीर की अवगाहना एक हजार योजन होती है। यह उत्कृष्ट

अर्थात् सबसे बड़ी अवगाहना है। मनुष्यों में सबसे बड़ी सवा पाँच सौ धनुष की और सबसे छोटी एक हाथ की होती है।

विशेष–एक योजन में आठ मील एवं एक धनुष में चार हाथ होते हैं।

पाँचों इन्द्रियों के जीवों की जघन्य अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग मात्र होती है। यह हम और आपको नहीं दिख सकती है। हम लोगों को दिखने वाले जीवों की अवगाहना मध्यम में शामिल है। शंख आदि जीवों की सबसे बड़ी अवगाहना इस जम्बूद्वीप से असंख्यातों द्वीप-समुद्रों के बाद होने वाले अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्र के जीवों में होती है। मनुष्यों का सबसे बड़ा शरीर चतुर्थकाल के आदि में और सबसे छोटा शरीर छठे काल में होता है।

प्रश्नावली–(1) जीव समास के कितने भेद हैं? (2) सूक्ष्म जीव का लक्षण बताओ? (3) योनि किसे कहते हैं? (4) तुम्हारा जन्म किस योनि से हुआ है? (5) चौरासी लाख योनि के भेद गिनाओ? (6) सम्मूर्च्छन जन्म और गर्भ जन्म में क्या अन्तर है? (7) तुम्हारा कौन सा जन्म है? (8) गर्भ जन्म के भेद और लक्षण बताओ? (9) अवगाहना किसे कहते हैं? (10) मनुष्यों में सबसे बड़ा शरीर कितने धनुष का है? (11) एक धनुष में कितने हाथ होते हैं?

पाठ 14-रत्नत्रय

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं। इन तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग है। इसके दो भेद हैं–

(1) व्यवहार रत्नत्रय (2) निश्चय रत्नत्रय

व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीवादि तत्त्वों का और सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का 25 दोष रहित श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। (इसका विस्तृत वर्णन तीसरे भाग में आ चुका है।)

व्यवहार सम्यग्ज्ञान

तत्त्वों के स्वरूप को संशय, विपर्यय एवं अनध्यवसाय दोष रहित जैसा का तैसा जानना सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्दर्शन होने पर ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता

है। विषय के भेद से सम्यग्ज्ञान के चार भेद हैं–प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। इन्हें चार वेद भी कहते हैं।

प्रथमानुयोग–जिसमें तीर्थंकर आदि महापुरुषों का इतिहास बताया जाता है, उन पुराणों और चारित्र-ग्रंथों को प्रथमानुयोग कहते हैं। जैसे-महापुराण, जीवंधर चरित्र आदि।

करणानुयोग–जो लोक-अलोक के विभाग को, युग परिवर्तन को और चारों गतियों को बतलाता है, वह करणानुयोग है। जैसे-त्रिलोकसार, त्रिलोकभास्कर, गोम्मटसार आदि।

चरणानुयोग–जिसमें श्रावक और मुनियों के चरित्र का वर्णन हो, वह चरणानुयोग है। जैसे-रत्नकरण्डश्रावकाचार, मूलाचार आदि।

द्रव्यानुयोग–जिसमें जीवादि तत्त्व, पुण्य-पाप और बंध-मोक्ष का वर्णन हो, वह द्रव्यानुयोग है। जैसे-तत्त्वार्थसूत्र, परमात्मप्रकाश, समयसार आदि।

ये चारों अनुयोग सम्यग्ज्ञान को बढ़ाने वाले हैं अथवा सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के उपाय हैं। अतः इन अनुयोगों को ही सम्यग्ज्ञान कह देते हैं।

व्यवहार सम्यक्चारित्र

अशुभ–पाप क्रियाओं से हटकर शुभ–पुण्य क्रियाओं में प्रवृत्ति करना सम्यक्चारित्र कहलाता है। इसके दो भेद हैं-सकलचारित्र और विकलचारित्र।

सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागी मुनियों के चारित्र को सकलचारित्र कहते हैं, जो कि पाँच महाव्रत आदि 28 मूलगुणरूप होता है। इनका वर्णन साधु परमेष्ठी के मूलगुण में आ चुका है।

श्रावक के एकदेशचारित्र को विकलचारित्र कहते हैं, उसके अणुव्रत आदि 12 व्रतों से 12 भेद होते हैं और दर्शन प्रतिमा आदि 11 प्रतिमारूप से 11 भेद होते हैं। इनका वर्णन पीछे हो चुका है।

परद्रव्यों से भिन्न अपनी आत्मा का श्रद्धान करना निश्चय सम्यग्दर्शन है। परद्रव्यों से भिन्न अपनी आत्मा को जानना निश्चय सम्यग्ज्ञान है। पंचेन्द्रिय विषयों से और कषायों से रहित होकर निर्विकल्प शुद्ध आत्मा के स्वरूप में लीन होना निश्चय सम्यक्चारित्र है। ये तीनों एक साथ होते हैं। अतः इन्हें रत्नत्रय भी कहते हैं। व्यवहार रत्नत्रय को भेद रत्नत्रय कहते हैं।

व्यवहार रत्नत्रय साधन है और निश्चयरत्नत्रय साध्य है अर्थात् व्यवहार

रत्नत्रय के होने पर ही निश्चय रत्नत्रय प्रकट होता है, पहले नहीं होता है। यद्यपि निश्चय रत्नत्रय साक्षात् मोक्ष का कारण है और व्यवहार रत्नत्रय परम्परा से मोक्ष का कारण है फिर भी व्यवहार रत्नत्रय के बिना निश्चय रत्नत्रय प्रकट नहीं हो सकता, ऐसा महान आचार्यों का जिन शासन में उपदेश है।

प्रश्न–छठे गुणस्थानवर्ती मुनियों का कौन सा रत्नत्रय होता है?

उत्तर–उन्हें व्यवहार रत्नत्रय ही होता है। निश्चय रत्नत्रय तो निर्विकल्प ध्यान की एकाग्रपरिणति में सातवें, आठवें आदि गुणस्थानवर्ती मुनियों के ही होता है।

प्रश्नावली–(1) चारों अनुयोगों के नाम और लक्षण बताओ? (2) व्यवहार सम्यक् चारित्र का लक्षण क्या है? (3) निश्चय रत्नत्रय का क्या लक्षण है? (4) निश्चय रत्नत्रय श्रावकों को होता है या नहीं?

पाठ 15-पर्याप्ति

सुदर्शन–गुरुजी! आपने जीवसमास में पर्याप्त-अपर्याप्त बताया है, सो ये क्या है?

अध्यापक–हाँ सुनो! जिस प्रकार से घर, घड़ा आदि पदार्थ पूर्ण (पूरे) बने हुए और अपूर्ण (अधूरे) ऐसे दो प्रकार से देखे जाते हैं उसी प्रकार से जीव भी पर्याप्ति नाम कर्म के उदय से पर्याप्त–पूर्ण और अपर्याप्ति नाम कर्म के उदय से अपर्याप्त–अपूर्ण होते हैं।

जब यह जीव एक शरीर को छोड़कर (मरकर) दूसरे शरीर को ग्रहण करता है, उस समय ग्रहण किये गये शरीर आदि के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को शरीर या इन्द्रिय आदिरूप परिणमाने की जीव की शक्ति के पूर्ण हो जाने को पर्याप्ति कहते हैं।

सुदर्शन–पर्याप्ति के कितने भेद है?

अध्यापक–पर्याप्ति के छह भेद होते हैं–आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन। एकेन्द्रिय जीव के प्रारंभ की चार, विकलत्रय और असैनी पंचेन्द्रिय के पाँच और सैनी पंचेन्द्रिय के छहों पर्याप्तियाँ होती हैं।

सुदर्शन–ये पर्याप्तियाँ पूर्ण कब होती हैं? हमारी पूर्ण हुईं या नहीं?

अध्यापक–ये सभी पर्याप्तियाँ अन्तर्मुहूर्त–48 मिनट के अंदर ही अंदर में पूर्ण हो जाती हैं। मनुष्यों की माता के गर्भ में जल के बुलबुले के समान शरीर में आते ही 48 मिनट के भीतर ही भीतर ये छहों पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं। पीछे धीरे-धीरे शरीर बनता रहता है और नव महीने में जन्म होता है। इसलिए तुम्हारी पर्याप्तियाँ तो गर्भ में ही पूर्ण हो चुकी थीं। जिनकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती हैं और मर जाते हैं, उनका शरीर पूरा बन नहीं पाता है। वह अपर्याप्त शरीर हम लोगों को नहीं दिख सकता है। ऐसे जीव एक श्वास के समय में 18 बार जन्म-मरण कर लेते हैं।

प्रश्नावली–(1) पर्याप्ति किसे कहते हैं? (2) दो इन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्तियाँ हैं? (3) पर्याप्तियों को पूरी होने में कितना समय लगता है? (4) अपर्याप्तक जीवकिन्हें कहते हैं?

पाठ 16-प्राण

सुदर्शन–गुरु जी! आज पड़ोस में एक आदमी के मरने से लोगों ने कहा-इसके प्राण निकल गये। सो प्राण क्या है?

अध्यापक–हाँ सुनो! जिसके सद्भाव से जीव में जीवितपने का और वियोग होने पर मरणपने का व्यवहार है, उनको प्राण कहते हैं। प्राण के दस भेद हैं–स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियाँ, मनोबल, वचनबल, कायबल, (ये तीन बल) आयु और श्वासोच्छ्वास ये दस प्राण हैं।

एकेन्द्रिय जीव के स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण होते हैं। दो इन्द्रिय जीव के रसना इन्द्रिय और वचनबल के बढ़ जाने से छह होते हैं। तीन इन्द्रिय जीव के एक घ्राण इन्द्रिय बढ़ जाने से सात, चार इन्द्रिय जीव में चक्षु इन्द्रिय बढ़ जाने से आठ, असैनी पंचेन्द्रिय में कर्णेन्द्रिय बढ़ जाने से नव तथा सैनी पंचेन्द्रिय जीव में मनोबल के बढ़ जाने से दस प्राण होते हैं।

सुदर्शन–किस गति में कितने प्राण होते हैं?

अध्यापक–तिर्यंचगति में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सभी जीव होते हैं, अतः चार प्राण से लेकर दसों प्राण तक होते हैं। देव, नारकी और मनुष्यों में दसों प्राण होते हैं।

सुदर्शन–तब तो गुरु जी! एकेन्द्रिय जीव की हिंसा में कम पाप लगता होगा, दो इन्द्रिय जीव की हिंसा में उससे अधिक, ऐसे-ऐसे पाप बहुत लगता होगा।

अध्यापक–हाँ! यह बात तो ठीक है, फिर भी किसी भी जीव को संकल्पपूर्वक (अभिप्रायपूर्वक) मारने से संकल्पी हिंसा का पाप बहुत ही भयंकर होता है।

प्रश्नावली–(1) प्राण कितने होते हैं? (2) चार इन्द्रिय जीव में मनोबल है या नहीं? (3) तीन इन्द्रिय जीव के कर्णेन्द्रिय है या नहीं? (4) दस प्राण किन-किन के होते हैं? (5) देवों के कितने प्राण हैं?

पाठ 17-संज्ञा

सुमित्र–पिताजी! आज मैंने मुनि महाराज जी के उपदेश में सुना है कि संसारी जीवों को चार संज्ञारूपी ज्वर चढ़ा हुआ है। सो ये संज्ञायें क्या हैं?

पिताजी–बेटा! जिनसे संक्लेशित होकर और जिनके विषय का सेवन करके यह जीव दोनों जन्म में दुःख उठाता है, उन्हें संज्ञा कहते हैं। ये चार हैं–आहार, भय, मैथुन और परिग्रह।

असाता वेदनीय के तीव्र उदय या उदीरणा होने से इस जीव को जो भोजन की वांछा होती है, वह आहार संज्ञा है।

भय कर्म का तीव्र उदय या उदीरणा से जो भाग जाने, छिपने आदि की इच्छा होती है, वह भय संज्ञा है।

वेद कर्म का तीव्र उदय या उदीरणा आदि से तथा विट पुरुषों की संगति आदि से जो काम सेवन की इच्छा होती है, वह मैथुन संज्ञा है।

लोभ कर्म के तीव्र उदय या उदीरणा से वस्त्र, स्त्री, धन, धान्य आदि परिग्रह को ग्रहण करने की व उनके अर्जन आदि की इच्छा है या उनमें जो ममत्व परिणाम है, वह परिग्रह संज्ञा है।

सुमित्र–ये संज्ञाएँ हम लोगों में तो हैं किन्तु एकेन्द्रिय जीवों में नहीं दिखती हैं, इसलिए वे जीव तो हम लोगों की अपेक्षा बहुत सुखी होंगे?

पिताजी–नहीं बेटा! उनमें भी ये चारों संज्ञाएं हैं। देखो, वृक्ष में भोजन की इच्छा है। यदि खाद, पानी, हवा आदि न मिले तो वे सूख जाते हैं अर्थात्

मर जाते हैं। भय भी है, लाजवंती का झाड़ छूते ही सिकुड़ जाता है।

यदि वृक्ष की जड़ के पास धन गाड़ दिया जावे तो जड़ उसी तरफ को अधिक फैल जाती है। ये बातें शास्त्र में लिखी हैं। इसके अतिरिक्त एकेन्द्रिय जीवों का दुःख आदि हमें दिखता नहीं है, फिर भी हम लोगों की अपेक्षा उनको बहुत अधिक दुःख होता है, ऐसा शास्त्रों में जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

मनुष्यों की संज्ञाएं नष्ट हो सकती हैं और वे महापुरुष भगवान् बन सकते हैं। हमें भी इन संज्ञाओं को घटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्नावली–(1) संज्ञा किसे कहते हैं? (2) आहार संज्ञा और परिग्रह संज्ञा का क्या लक्षण है? (3) दो इन्द्रिय जीव में कितनी संज्ञाएँ हैं?

पाठ 18-सोलहकारण भावना

जिनको बार-बार भाया जाए, उन्हें भावना कहते हैं। संख्या में 16 होने से इन्हें सोलहकारण भावना कहते हैं। ये तीर्थंकरप्रकृति का बंध कराने में कारण हैं।

1. **दर्शनविशुद्धि**–पच्चीस मल दोष रहित विशुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करना।
2. **विनयसम्पन्नता**–देव, शास्त्र, गुरु तथा रत्नत्रय की विनय करना।
3. **शील व्रतों में अनतिचार**–व्रतों और शीलों में अतिचार नहीं लगाना।
4. **अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग**–सदा ज्ञान के अभ्यास में लगे रहना।
5. **संवेग**–धर्म और धर्म के फल में अनुराग होना।
6. **शक्तितस्तप**–अपनी शक्ति को न छिपाकर तप करना।
7. **शक्तितत्याग**–अपनी शक्ति के अनुसार आहार आदि दान देना।
8. **साधुसमाधि**–साधुओं का उपसर्ग आदि दूर करना या समाधि सहित मरण करना।
9. **वैयावृत्यकरण**–व्रती, त्यागी आदि की सेवा वैयावृत्ति करना।
10. **अर्हंत भक्ति**–अर्हंत की भक्ति करना।
11. **आचार्य भक्ति**–आचार्य की भक्ति करना।

12. बहुश्रुत भक्ति—उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति करना।

13. प्रवचन भक्ति—जिनवाणी की भक्ति करना।

14. आवश्यक अपरिहाणि—छह आवश्यक क्रियाओं को सावधानी से पालना।

15. मार्ग प्रभावना—जैन धर्म का प्रभाव फैलाना।

16. प्रवचन वत्सलत्व—साधर्मी जनों में अगाध प्रेम करना।

इन सोलह भावनाओं में दर्शन-विशुद्धि भावना का होना बहुत जरूरी है। फिर उसके साथ दो, तीन आदि कितनी भी भावनाएँ हों या सभी हों, तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है। तीर्थंकर प्रकृति के बाँधने वाले जीव के परिणामों में जगत के सभी प्राणियों के उद्धार की करुणापूर्ण भावना बहुत तीव्र हुआ करती है।

प्रश्नावली—(1) भावनाएँ कितनी हैं? (2) दर्शन विशुद्धि, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, साधुसमाधि, अर्हंत भक्ति, आवश्यक अपरिहाणि इन भावनाओं के लक्षण बताओ? (3) दर्शनविशुद्धि के बिना ये भावनाएँ तीर्थंकर प्रकृति का बंध करायेंगी या नहीं?

पाठ 19-दस धर्म

उत्तम क्षमा—

सब कुछ अपकार सहन करके, शत्रु पर पूर्ण क्षमा करना।
यह क्रोध अग्नि को शीतल जल, इससे सब चित्त व्यथा हरना।।
कमठासुर ने भव-भव में भी, उपसर्ग अनेकों बार किया।
पर पार्श्व प्रभू ने सहन किया, शांति का ही उपचार किया।।1।।

उत्तम मार्दव—

मृदुता का भाव कहा मार्दव, यह मान शत्रु मर्दनकारी।
वह दर्शन ज्ञान चरित तथा, उपचार विनय से सुखकारी।।
मद आठ जाति कुल आदी हैं, क्या उनसे सुखी हुआ कोई।
रावण का मान मिला रज में, यम नृप ने सब विद्या खोई।।2।।

उत्तम आर्जव—

ऋजु भाव कहा आर्जव उत्तम, मन वच औ काय सरल रखना।
इन कुटिल किये माया होती, तिर्यग्गति के बहु दुःख भरना।।
नृप सगर छद्म से ग्रंथ रचा, मधुपिंगल का अपमान किया।
उसने भी कालासुर होकर, हिंसामय यज्ञ प्रधान किया।।3।।

उत्तम शौच—

शुचि का जो भाव शौच वो ही, मन से सब लोभ दूर करना।
निर्लोभ भावना से नित ही, सब जग को स्वप्न सदृश गिनना।।
यद्यपि रजस्वेद सहित मुनिवर, अति शुष्क मलिन तन होते हैं।
पर वे अंतःशुचि गुणधारी, नित कर्म मैल को धोते हैं।।4।।

उत्तम सत्य—

सत्, सम्यक् और प्रशस्त वचन, कहना है सत्यधर्म सुन्दर।
अस्ति को अस्तिरूप कहना, मिथ्या अपलाप रहित सुखकर।।
वसु नृपति असत् का पक्ष लिया, सिंहासन पृथ्वी में धसका।
मरकर वह सप्तम नरक गया, है झूठ वचन सबको दुखदा।।5।।

उत्तम संयम—

जितना भी हो संयम पालो, थोड़ा भी संयम गुणकारी।
श्रावक भी एकदेश पालें, त्रसहिंसा के नित परिहारी।।
रावण के एक नियम से ही, सीतेन्द्र नरक में जा करके।
सम्यक् निधि देकर तृप्त किया, लक्ष्मण से बैर मिटा करके।।6।।

उत्तम तप—

उत्तम तप द्वादश विध माना, बाह्याभ्यंतर के भेदों से।
अनशन ऊनोदर आदि तथा, प्रायश्चित्तादि प्रभेदों से।।
तपबल से ऋद्धि सभी प्रगटें, भविजन के बहुविध त्रास हरें।
ऋषि स्वयं तपोधन होकर भी, निःस्पृह हो निज सुख चाह करें।।7।।

उत्तम त्याग—

वह उत्तम त्याग कहा जग में, जो त्यागे विषय कषायों को।
शुभदान चार विध के देवे, उत्तम आदि त्रय पात्रों को।।
थोड़े में भी थोड़ा देकर, बहु धन की इच्छा मत करिये।
इच्छा की पूर्ति नहीं होगी, सागर में कितना जल भरिये।।8।।

उत्तम आकिंचन्य—

नहीं किंचित् भी मेरा जग में, यह ही आकिंचन भाव कहा।
बस एक अकेला है आत्मा, यह गुण अनंत का पुंज अहा।।
जिनमत के मुनिगण सब परिग्रह तज, दिग् अम्बर को धरते हैं।
बस पिच्छी और कमण्डलु ले, वे भवसागर से तिरते हैं।।9।।

उत्तम ब्रह्मचर्य–

यह 'ब्रह्म' स्वरूप कहा आतम, इसमें चर्या ब्रह्मचर्य कहा।
गुरुकुल में वास रहे नित ही, वह भी है ब्रह्मचर्य दुखहा।।
भोगों को जिनने बिन भोगे, उच्छिष्ट समझकर छोड़ दिया।
उन बालयती को मैं नित प्रति, वंदूँ प्रणमूं निज खोल हिया।।10।।

दोहा–

धर्म कल्पतरु के निकट, मांगूं शिवफल आज।
'ज्ञानमती' लक्ष्मी सहित, पाऊं सुख साम्राज।।11।।

पाठ 20–चौदह मार्गणा

जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में जीवों का अन्वेषण (खोज) किया जाये, उनको ही मार्गणा कहते हैं। ये अपने-अपने कर्म के उदय से होती हैं। इनके 14 भेद हैं-गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व और आहार ये चौदह मार्गणाएँ हैं।

1. चारों गतियों में गमन करने के कारण को गति कहते हैं। उसके चार भेद हैं– नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगति।

2. जो इन्द्र के समान हो अथवा आत्मा के लिंग को इन्द्रिय कहते हैं। इसके 5 भेद हैं– स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।

3. त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय को काय कहते हैं। इसके 6 भेद हैं– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय।

4. शरीर नामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की जो कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है, उसको योग कहते हैं। उसके 15 भेद हैं– सत्य, असत्य, उभय और अनुभय ये चार मनोयोग, इन्हीं सत्यादि के चार वचनयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण, ये सात काययोग, ऐसे 15 योग हैं।

5. वेद नामक नोकषाय के उदय से उत्पन्न हुई जीव के मैथुन की अभिलाषा को भाववेद कहते हैं और नामकर्म के उदय से आविर्भूत जीव के

चिन्ह विशेष को द्रव्यवेद कहते हैं। वेद के 3 भेद हैं– स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

6. जो आत्मा के सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र रूप परिणामों को कषे– घाते, उसको कषाय कहते हैं। उसके 16 भेद हैं– अनंतानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार। प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि चार और संज्वलन क्रोधादि चार।

7. जो त्रिकाल विषयक समस्त पदार्थों को जाने, वह ज्ञान है। अथवा आत्मा को जानने का गुण ज्ञानगुण है। उसके 8 भेद हैं– मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल तथा कुमति, कुश्रुत, कुअवधि।

8. व्रतधारण, समितिपालन, कषायनिग्रह, योगों का त्याग और इन्द्रिय विजय को संयम कहते हैं। उसके 7 भेद हैं– सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात ये 5 संयम तथा देशसंयम और असंयम।

9. सामान्य विशेषात्मक पदार्थ के केवल सामान्य अंश को ग्रहण करने वाला दर्शन है। इसके चार भेद हैं– चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

10. कषाय के उदय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। इसके 6 भेद हैं– कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल। इनमें 3 अशुभ और 3 शुभ हैं।

11. जो मुक्ति प्राप्ति के योग्य है उसे भव्य कहते हैं। भव्य मार्गणा के 2 भेद हैं– भव्य और अभव्य। जिनकी सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हों, उनको भव्य कहते हैं। जो इन दोनों से अर्थात् मुक्ति प्राप्ति की योग्यता से रहित हों, वे अभव्य हैं।

12. जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित छह द्रव्यादि का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है। इस मार्गणा के 6 भेद हैं– उपशम सम्यक्त्व, क्षयोपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन और मिथ्यात्व।

13. नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम को या उससे उत्पन्न ज्ञान को संज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा जिसके हो, उसको संज्ञी कहते हैं। इस मार्गणा के दो भेद हैं– संज्ञी और असंज्ञी।

14. औदारिक आदि शरीर और पर्याप्ति के योग्य पुद्गलों के ग्रहण करने को आहार कहते हैं। इस मार्गणा के दो भेद हैं–आहार और अनाहार।

इन चौदह मार्गणाओं के उत्तर भेद 86 होते हैं।

प्रश्नावली–(1) मार्गणा किसे कहते हैं? (2) इन्द्रिय, काय, वेद, कषाय, संयम, लेश्या और आहारक इन मार्गणाओं के लक्षण बताओ? (3) चौदह मार्गणाओं के उत्तर भेद कितने हैं? (4) तुम्हारे कितनी मार्गणाएँ हैं?

पाठ 21–जम्बूद्वीप और चैत्यालय

संजय–गुरु जी! इस जम्बूद्वीप में सुमेरुपर्वत, भोगभूमि, कर्मभूमि और विदेह क्षेत्र ये सब कहाँ-कहाँ हैं?

गुरु जी–सुनो! एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप में सबसे बीच में सुमेरु पर्वत है। यह एक लाख चालीस योजन ऊँचा है। पृथ्वी पर दस हजार योजन चौड़ा गोलाकार है। इसमें पृथ्वी पर भद्रसाल वन है। उससे 500 योजन ऊपर नंदनवन है। उससे 62500 योजन ऊपर सौमनसवन एवं 36000 योजन ऊपर पांडुकवन है। इन चारों वनों में चारों ही दिशाओं में एक-एक चैत्यालय होने से 16 चैत्यालय हैं। पांडुक वन की विदिशाओं में पांडुक आदि 4 शिलाएँ हैं। उन पर तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है। सुमेरुपर्वत नीचे से घटते-घटते ऊपर चूलिका के शिखर पर 4 योजन का रह गया है। सुमेरुपर्वत की चारों विदिशाओं में चार गजदंत पर्वत हैं, जो कि हाथी के दाँत सदृश लम्बे हैं। इस द्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक्, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं। उनके बीच में पूर्व-पश्चिम लम्बे हिमवान्, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी ये छः पर्वत हैं। इन पर बीच-बीच में क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केशरी, महापुंडरीक और पुंडरीक नाम वाले छः सरोवर हैं। इनमें पृथ्वीकायिक बड़े-बड़े कमल बने हुए हैं जिनमें क्रम से श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये देवियाँ अपने-अपने परिवार सहित रहती हैं।

पहले पद्म सरोवर और अन्त के पुंडरीक सरोवर से तीन-तीन नदियाँ निकली हैं। बाकी के सरोवरों से दो-दो नदियाँ निकली हैं। गंगा, सिंधु, रोहित, रोहितास्या, हरित, हरिकांता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकांता,

सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा ये चौदह नदियाँ हैं। क्रम से एक-एक क्षेत्र में दो-दो नदियाँ बहती हुई लवण समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं।

हैमवत् और हैरण्यवत् क्षेत्र में जघन्य भोग भूमि है, हरि और रम्यक् में मध्यम भोगभूमि है तथा विदेह क्षेत्र के दक्षिण में देवकुरु और उत्तर में उत्तरकुरु है। इन दोनों में उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था है। इस तरह छः भोगभूमि हैं। इनमें मनुष्य युगल ही रहते हैं। वे दम्पत्ति बड़े ही सुखी हैं और दस प्रकार के कल्पवृक्षों से भोजन, वस्त्र आदि सामग्री प्राप्त करते हैं। दानादि के पुण्य से वहाँ जन्म लेते हैं। वहाँ से मरकर मंद कषायी होने से देवगति में जन्म लेते हैं।

संजय–गुरुजी! विदेह क्षेत्र में आपने भोगभूमि बता दी। हमने तो सुना है वहाँ हमेशा कर्मभूमि ही रहती है।

गुरुजी–हाँ संजय! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। विदेह क्षेत्र में बहुत सी चीजें हैं। सुनो! पहले तुम्हें बताया था कि भरत क्षेत्र $526\frac{6}{19}$ योजन विस्तृत है। आगे-आगे के पर्वत और क्षेत्र विदेह तक दूने-दूने होते गये हैं।

इसलिए विदेह क्षेत्र का विस्तार $33684\frac{4}{19}$ योजन हो गया है। इस विदेह के बीचों-बीच में सुमेरु पर्वत है। इस सुमेरु के पूर्व में पूर्व विदेह तथा पश्चिम में पश्चिम विदेह ऐसे दो हिस्से हो गये हैं, चूँकि मेरु के दक्षिण उत्तर में देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र हैं। नील और निषध पर्वत से सीता, सीतोदा महानदियाँ निकलकर पूर्व विदेह में व पश्चिम विदेह में चली जाती हैं। इससे उन एक-एक विदेह के दो-दो हिस्से हो जाने से चार हिस्से हो गये हैं। विदेह के एक हिस्से में क्रम से वक्षार पर्वत, विभंगा नदी ऐसे चार वक्षार और तीन विभंगा नदियाँ हैं जिनके निमित्त से इस एक विदेह के भी 8 हिस्से हो गये हैं। ऐसे ही शेष तीनों के आठ-आठ हिस्से होते हैं। इस तरह 16 वक्षार और 12 विभंगा नदियों से विदेह के 32 हिस्से हो जाते हैं। इन बत्तीसों विदेहों में भी एक-एक विजयार्ध पर्वत और दो-दो नदियों के बहने से छह-छह खण्ड हो गये हैं। उनमें मध्य के आर्यखण्ड में कर्मभूमि है, जो कि शाश्वत है। वहाँ कभी भी षट्काल परिवर्तन नहीं होता है। पूर्व विदेह के एक तरफ के आठ विदेहों में से किसी एक में श्री सीमंधर भगवान, दूसरे तरफ के आठ में से किसी एक में युगमंधर भगवान विराजमान हैं। ऐसे ही पश्चिम विदेह में बाहु और सुबाहु भगवान

समवसरण में विराजमान हैं। इस तरह विदेह की 32 और भरत क्षेत्र तथा ऐरावत क्षेत्र की एक-एक, ऐसे ये 34 कर्मभूमियाँ हैं।

संजय—इस भरत क्षेत्र में छह खण्ड कैसे हुए हैं?

गुरुजी—भरत क्षेत्र के बीच में एक खंड पूर्व पश्चिम समुद्र तक लम्बा और 50 योजन चौड़ा, 25 योजन ऊँचा विजयार्ध पर्वत है। उसके नीचे की श्रेणी पर देव और मध्य की श्रेणी पर विद्याधर मनुष्य रहते हैं।

हिमवान् पर्वत के पद्म सरोवर से पूर्व तरफ से गंगा नदी और पश्चिम तरफ से सिंधु नदी निकलकर नीचे गिरकर विजयार्ध पर्वत की गुफा में होती हुई बाहर निकलकर क्षेत्र में बहती हुई पूर्व-पश्चिम समुद्र में मिल जाती है।

विजयार्ध पर्वत और गंगा सिंधु नदी के निमित्त से इस भरत क्षेत्र के छह खण्ड हो जाते हैं। इसके मध्य का आर्यखण्ड है। बाकी 5 म्लेच्छ खण्ड हैं। ऐसे ही ऐरावत क्षेत्र में भी छह खण्ड हो गये हैं।

संजय—इस द्वीप को जम्बूद्वीप क्यों कहते हैं?

गुरुजी—वास्तव में ये द्वीप-समुद्र अनादि निधन हैं और इनके नाम भी अनादि निधन हैं। फिर भी उत्तरकुरु भोगभूमि में ईशान कोण में एक जम्बूवृक्ष है जो कि पृथ्वीकायिक रत्नों से निर्मित है। उसकी उत्तर शाखा पर जिनमंदिर है। बाकी शाखाओं पर देवों के भवन हैं। इस जम्बूवृक्ष के निमित्त से ही इस द्वीप का नाम सार्थक है। ऐसे ही देवकुरु भोगभूमि में शाल्मलि वृक्ष, वक्षार, विजयार्ध, गजदंत, हिमवान् आदि पर्वतों पर भी एक-एक जिन मंदिर हैं।

संजय—जम्बूद्वीप में अकृत्रिम चैत्यालय कितने हैं?

गुरुजी—अठहत्तर चैत्यालय हैं। सुमेरुपर्वत के 16, गजदंत पर्वत के 4, हिमवान् पर्वत आदि छह पर्वतों के 6, सोलह वक्षार पर्वतों के 16, विदेह के बत्तीस, विजयार्धों के 32, भरत ऐरावत के दो विजयार्धों के 2, जम्बू शाल्मलि के दो वृक्षों के 2, ऐसे कुल मिलाकर 16+4+6+16+32+2+2=78 जिनमंदिर हैं। उनमें विराजमान जिन प्रतिमाओं को बार-बार नमस्कार होवे।

संजय—आपने विजयार्ध पर्वत की श्रेणी पर विद्याधर बतलाये, सो ये कौन हैं?

गुरुजी—ये कर्मभूमियाँ मनुष्य हैं। इनके यहाँ जन्म से ही अनेक विद्याएं सिद्ध रहती हैं और मंत्र आदि के अनुष्ठानों से अनेक विद्याओं को सिद्ध करते रहते हैं। उन विद्याओं के बल से चाहे जहाँ विचरण करते हैं। आकाशगामिनी

विद्या से सुमेरुपर्वत पर जाकर वंदना कर लेते हैं। अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना करते रहते हैं। ये बहुत ही पुण्यशाली लोग हैं। आज से 2500 वर्ष पूर्व भगवान महावीर स्वामी के समय तक इन लोगों का यहाँ से वैवाहिक संबंध, आने-जाने आदि का संबंध रहा था। अब पंचमकाल में नहीं है।

नोट—उत्तरप्रदेश के मेरठ जिले में स्थित ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर में यह जम्बूद्वीप की रचना निर्मित है, उसके बीचोंबीच में 101 फुट ऊँचा सुमेरु पर्वत है। उस जम्बूद्वीप के दर्शन करके पूरे जैन भूगोल का ज्ञान सहज में प्राप्त हो जाता है।

प्रश्नावली—(1) सुमेरु पर्वत का वर्णन करो? (2) जम्बूद्वीप में कितनी भोगभूमियाँ हैं और वे कहाँ हैं? (3) भोगभूमि में क्या विशेषताएँ हैं? (4) बत्तीस विदेहों का स्पष्टीकरण करो? (5) भरतक्षेत्र के छह खंड कैसे हुए? (6) अकृत्रिम अठत्तर चैत्यालय कौन-कौन हैं? (7) विद्याधर मनुष्यों में और आप में क्या अन्तर है?

पाठ 22-षट्काल परिवर्तन

संजय—गुरु जी! आपने कहा था कि विदेह में षट्काल परिवर्तन नहीं होता, सो वह क्या है?

गुरुजी—सुनो! काल के दो भेद हैं—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी।

जिसमें जीवों की आयु, ऊँचाई, भोगोपभोग संपदा और सुख आदि बढ़ते जावें, वह उत्सर्पिणी है और जिसमें घटते जावें, वह अवसर्पिणी है। इन दोनों को मिलाकर एक कल्पकाल होता है जो कि बीस कोड़ाकोड़ी सागर का है।

अवसर्पिणी के छह भेद हैं—सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दुःषमा, दुःषमा-सुषमा, दुःषमा और दुःषमा-दुःषमा। इसी प्रकार उत्सर्पिणी के भी दुःषमा-दुःषमा आदि को लेकर छह भेद हैं।

सुषमा-सुषमा—इसमें उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था रहती है।

सुषमा—इसमें मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था रहती है।

सुषमा-दुःषमा—इसमें जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था रहती है।

दुःषमा-सुषमा—इसमें कर्मभूमि की व्यवस्था रहती है। इसी चतुर्थकाल में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र, 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण ऐसे 63 शलाका पुरुष—महापुरुष जन्म लेते हैं।

दुःषमा—जो कि वर्तमान में यहाँ चल रहा है। इसमें पाप की बहुलता होने से दिन पर दिन आयु, संपदा, सुख आदि का ह्रास होता रहता है।

दुःषमा-दुःषमा—इस काल में अग्नि का अभाव हो जाने से लोग कच्चा ही माँस खाने वाले, महापापी, दुःखी, दरिद्री, घर, वस्त्र, कुटुम्ब आदि से रहित होते हैं तथा मरकर नरक और तिर्यंच गति में ही जाते हैं।

संजय—फिर क्या होता है?

गुरुजी—इस काल के 49 दिन शेष रहने पर भयंकर प्रलय काल आता है। उस समय सात दिन तक बहुत ही भीषण संवर्तक वायु चलती है, जो वृक्ष, पर्वत, शिला आदि को चूर्ण कर देती है। उस समय सभी जीव बहुत दुःखी होते हैं। तब कुछ देव और विद्याधर दयालु होकर जिनका कुछ पुण्य है, ऐसे मनुष्य और तिर्यंचों के बहत्तर युगलों को तथा और भी कुछ जीवों को वहाँ से ले जाकर विजयार्ध की गुफा आदि स्थानों में रख देते हैं।

उस समय यहाँ गंभीर गर्जना के सहित मेघ सात-सात दिन बर्फ, खाराजल, विषजल, धुआं, धूलि, वज्र और अग्नि को वर्षाते हैं। उससे यह चित्रा पृथ्वी जो एक योजन (4000 मील) ऊँची बढ़ गई है, वह जलकर नष्ट हो जाती है।

संजय—प्रलय के बाद फिर क्या होता है?

गुरुजी—पुनः उत्सर्पिणी काल शुरू हो जाता है। इसमें पहले दुःषमा-दुःषमा काल होता है। इस काल के प्रारंभ में पुष्कर मेघ सात दिन अच्छा जल बरसाते हैं। पुनः दूध, अमृत और दिव्यरस आदि की वर्षा होने से वातावरण ठीक हो जाता है। तब गुफाओं में छिपाये गये वे युगल मनुष्य, तिर्यंच आदि बाहर निकल आते हैं। उनसे संतान परम्परा चलती है। आगे-आगे आयु, ऊँचाई आदि बढ़ते जाते हैं।

धीरे-धीरे यह काल पूर्ण होकर दुःषमा काल आता है। इस काल के प्रारंभ में उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष और ऊँचाई तीन हाथ की रहती है। इसमें हजार वर्ष के शेष रहने पर कुलकर (श्रेष्ठ पुरुष) उत्पन्न होने लगते हैं। ये कुलकर चौदह होते हैं। ये कुलकर समयोचित शिक्षाएँ देते हैं। वनस्पति आदि के होते हुए भी अग्नि नहीं रहती। यह उपदेश देते हैं कि घर्षण कर अग्नि उत्पन्न करो, भोजन पकाओ आदि समझाते हैं। अंतिम कुलकर के समय विवाह विधि चालू हो जाती है।

पुनः दुःषमा-सुषमा काल का प्रारंभ होता है, उसमें तीर्थंकर चक्रवर्ती

आदि महापुरुष उत्पन्न होते हैं। आगे पुनः सुषमा-दुःषमा काल में जघन्य भोगभूमि, सुषमा काल में मध्यम भोगभूमि एवं सुषमा-सुषमा काल में उत्तम भोगभूमि हो जाती है।

इस तरह असंख्यात उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी बीत जाने पर हुंडावसर्पिणी काल आता है जो कि वर्तमान में चल रहा है।

संजय—आज मुझे सही बात मालूम हुई। कुछ लोग कहते हैं कि पहले सब बंदर थे। उनकी पूँछ घिसते-घिसते धीरे-धीरे मनुष्य बन गये। यह कल्पना बिल्कुल ही गलत है। अब यह बतलाइये कि यह परिवर्तन कहाँ पर होता है?

गुरुजी—हाँ संजय! यह काल परिवर्तन भरत और ऐरावत क्षेत्र के आर्यखंड में ही होता है, अन्यत्र नहीं होता है। जैन सिद्धान्त के अनुसार यही सृष्टि का क्रम है और सब कल्पना बिल्कुल गलत है।

प्रश्नावली—(1) अवसर्पिणी के कितने भेद हैं? (2) तीसरे, पाँचवें और छठे काल का वर्णन करो? (3) प्रलय काल में क्या होता है? (4) शलाका पुरुष और कुलकर पुरुषों में क्या अन्तर है? (5) हुंडावसर्पिणी काल कब होता है? (6) वह काल परिवर्तन कहाँ-कहाँ होता है और कहाँ-कहाँ नहीं होता है?

पाठ 23-प्रमाण और नय

प्रमाण का वर्णन

'सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्' सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते हैं, अथवा जो वस्तु के सर्वदेश को जानता है, उस ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। ज्ञान के 5 भेद हैं—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान।

इनमें से मति-श्रुत ज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं और बाकी के तीन प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इनमें भी अवधि, मनःपर्यय विकल प्रत्यक्ष हैं तथा केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

1. इन्द्रिय और मन की सहायता से जो पदार्थों का ज्ञान होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं। इसके 4 भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

वस्तु के सत्ता मात्र ग्रहण को दर्शन कहते हैं।

अवग्रह—दर्शन के बाद हुए शुक्ल, कृष्ण आदि विशेष ज्ञान को अवग्रह कहते हैं। जैसे—नेत्र से सफेद वस्तु को जानना।

ईहा–अवग्रह से ज्ञात पदार्थ में विशेष जानने की इच्छा ईहा है। जैसे- यह सफेद रूप वाली वस्तु बगुला है या पताका?

अवाय–विशेष चिन्हों द्वारा निर्णय हो जाने को अवाय कहते हैं। जैसे- पंख फड़फड़ाना आदि से बगुले का निश्चय होना।

धारणा–ज्ञात विषय को कालांतर में नहीं भूलने को धारणा कहते हैं।

इस मतिज्ञान के इन चार भेदों के विषय की अपेक्षा 336 भेद हो जाते हैं।

2. मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ का जो विशेषरूप से ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। यह मतिज्ञानपूर्वक होता है। इसके मूल में दो भेद हैं- अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट। अंगबाह्य के सामायिक, वंदना आदि अनेक भेद हैं और अंगप्रविष्ट के बारह भेद हैं– आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथांग, उपासकाध्ययनांग, अंतःकृद्दशांग, अनुत्तरौपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग और दृष्टिवादांग ये द्वादशांग कहलाते हैं।

3. मर्यादा लिए हुए रूपी पदार्थ का इंद्रियादि की सहायता बिना जो ज्ञान होता है, उसे अवधिज्ञान कहते हैं। इसके 2 भेद हैं– भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय। भव ही जिसमें निमित्त हो, वह भवप्रत्यय है। यह देव और नारकी को होता है। जो व्रत-नियम आदि से, कर्म के क्षयोपशम से होता है, वह गुणप्रत्यय है। यह मनुष्य और तिर्यंचों के होता है।

4. काल आदि की मर्यादा लिए हुए परकीय मनोगतरूपी पदार्थ का जो ज्ञान होता है, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। इसके दो भेद हैं- ऋजुमति और विपुलमती।

5. सब द्रव्यों को तथा उसकी सर्वपर्यायों को एक साथ स्पष्ट जानने वाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान लोकालोक प्रकाशी है।

प्रारंभ के तीन ज्ञान मिथ्या भी होते हैं। मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि जीवों के कुमति, कुश्रुत और कुअवधि (विभंगावधि) कहलाते हैं।

विशेषार्थ–न्यायग्रंथों में भी प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेद किए हैं। किन्तु वहाँ पर प्रत्यक्ष के सांव्यवहारिक और पारमार्थिक दो भेद किए हैं तथा सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष से मतिज्ञान को लिया है। आगे पारमार्थिक प्रत्यक्ष के विकल-सकल दो भेद करके विकल में अवधि, मनःपर्यय को और सकल में केवलज्ञान को लिया है। परोक्ष प्रमाण के स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ऐसे पाँच भेद किये हैं। उसमें से आगम प्रमाण में श्रुतज्ञान को लिया है।

नयों का वर्णन

वस्तु के एकदेश जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। उसके मूल में दो भेद हैं– द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। जो नय द्रव्य को जानता है वह द्रव्यार्थिक है, जो पर्याय को जानता है वह पर्यायार्थिक है।

नय के सात भेद हैं–नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, और एवंभूत। अध्यात्म भाषा से भी नय के 2 भेद हैं- निश्चयनय और व्यवहारनय।

वस्तु के स्वभाव को कहने वाला निश्चयनय है। कर्म के निमित्त होने वाले औपाधिक भाव को ग्रहण करने वाला व्यवहारनय है। जैसे– निश्चयनय की अपेक्षा से संसारी जीव भी चैतन्यमय प्राणों वाला है, सकल विमल केवलज्ञान केवलदर्शन रूप है, अमूर्तिक है, अपने ही शुद्ध भावों का कर्ता है, आकार रहित, असंख्यात लोक प्रमाण प्रदेश वाला है, अपना अनंतज्ञान सुख आदि गुणों का भोक्ता है, शुद्ध है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

व्यवहारनय की अपेक्षा से जीव दस प्राणों से जीवित रहने वाला है। मतिज्ञानावरण आदि कर्म क्षयोपशम के अनुसार मति, श्रुत आदि क्षयोपशम ज्ञानसहित है, कर्मबंध से सहित होने से मूर्तिक है, ज्ञानावरण आदि पुद्गल द्रव्य कर्मों का कर्ता है, नामकर्म के उदय से प्राप्त हुए छोटे या बड़े शरीर में ही रहने वाला है क्योंकि आत्मा के प्रदेशों का संकोच या विस्तार हो जाता है।

कर्म के उदय से प्राप्त सुख-दुःख का भोक्ता है, गुणस्थान, मार्गणा आदि को प्राप्त होने से अशुद्ध है। संसार में परिभ्रमण करने से संसारी है। एक पर्याय को छोड़ने के बाद भी कार्मण शरीर से सहित होने से यत्र-तत्र दिशाओं में गमन करने वाला है।

इनमें जब निश्चयनय की विवक्षा (कहने की इच्छा) होती है, तब वह प्रधान हो जाता है और व्यवहारनय की अविवक्षा (कहने की इच्छा न होने) से वह गौण-अप्रधान हो जाता है। ऐसे ही जब व्यवहारनय की विवक्षा है, तब वह प्रधान है और निश्चयनय की अविवक्षा होने से वह गौण हो जाता है। ये दोनों मुख्य और गौण रूप से परस्पर सापेक्ष हैं, निरपेक्ष नहीं होते हैं। एक नय कहठ करने से मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं और दोनों नयों से वस्तु को समझने वाले सम्यग्दृष्टि होते हैं।

प्रश्नावली–(1) मतिज्ञान के भेद और उसके लक्षण बताओ? (2) प्रमाण और नय में क्या अन्तर है? (3) अवधिज्ञान के लक्षण और भेद बताओ? (4) नय का लक्षण क्या है? अध्यात्मभाषा से नय के भेद और उनके लक्षण बताओ?

पाठ 24-स्याद्वाद और सप्तभंगी

स्यात्-कथंचित् रूप से 'वाद'-कथन करने को स्याद्वाद कहते हैं। यह सर्वथा एकान्त का त्याग करने वाला है और कथंचित् शब्द के अर्थ को कहने वाला है। जैसे जीव कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है अर्थात् जीव किसी अपेक्षा से (द्रव्यार्थिक नय से) नित्य है और किसी अपेक्षा से (पर्यायार्थिक नय से) अनित्य है। अथवा जीव नित्य भी है, अनित्य भी है। यहाँ 'भी' शब्द का प्रयोग होने से स्याद्वाद कथन है। उसमें अपेक्षा लगाकर कथन करना चाहिए।

यह स्याद्वाद सप्तभंग और नयों की अपेक्षा रखता है। सप्तभंगी का लक्षण प्रश्न के निमित्त से एक ही वस्तु में अविरोधरूप विधि और प्रतिषेध की कल्पना सप्तभंगी है। जैसे-(1) स्यात् अस्ति (2) स्यात् नास्ति (3) स्यात् अस्तिनास्ति (4) स्यात् अवक्तव्य (5) स्यात् अस्ति अवक्तव्य (6) स्यात् नास्ति अवक्तव्य (7) स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य। इसको आत्मा में घटित करते हैं-

मेरी आत्मा कथंचित्-अपने स्वरूप से 'अस्तिरूप' है। मेरी आत्मा कथंचित् पद अचेतन आदि परस्वरूप से 'नास्तिरूप' है। मेरी आत्मा कथंचित् स्वपर स्वरूपादि को क्रम से कहने से 'अस्ति-नास्तिरूप' है। मेरी आत्मा कथंचित् स्वपर स्वरूपादि से एक साथ न कही जा सकने से अवक्तव्य है। मेरी आत्मा कथंचित् स्वरूप से अस्तिरूप और एक साथ दोनों धर्मों को नहीं कह सकने से 'अस्तिअवक्तव्य' है। मेरी आत्मा स्वपर स्वरूप से क्रम से कही जाने से और दोनों धर्मों को एक साथ नहीं कहे जा सकने से अस्ति-नास्ति 'अवक्तव्य' है। प्रत्येक वस्तु के प्रत्येक धर्मों में ये सात भंग घटित होते हैं।

अनेकांत-प्रत्येक वस्तु में अस्तित्व, नास्तित्व, एक, अनेक, भेद, अभेद आदि अनंत धर्म पाये जाते हैं। अनेक अन्त (धर्म) को कहने वाला अनेकांत है। जैसे-जिनदत्त सेठ किसी का पिता है, किसी का पुत्र है, किसी का चाचा है, किसी का भतीजा है। पिता-पुत्र, भाई, भतीजा-चाचा आदि अनेक धर्म उसमें मौजूद हैं। जिसका पिता है, उसी का पुत्र नहीं है, किन्तु पुत्र का पिता है और अपने पिता का पुत्र है। वैसे ही प्रत्येक वस्तु जिस रूप से अस्तिरूप है उसी रूप से नास्तिरूप नहीं है। किन्तु अपने स्वरूप से अस्तिरूप

और पररूप से नास्तिरूप है। यह अनेकांत संशयरूप या छलरूप नहीं है। अपनी-अपनी अपेक्षा से वस्तु के यथार्थ धर्मों को कहने वाला है। यह "अनेकांत" जैनधर्म का प्राण है।

प्रश्नावली-(1) स्याद्वाद का क्या अर्थ है? (2) सप्तभंगी के नाम और लक्षण बताओ? (3) अनेकांत का क्या लक्षण है? (4) अनेकांत को उदाहरण देकर समझाओ?

पाठ 25-भगवान पार्श्वनाथ

पोदनपुर के राजा अरविंद के कमठ और मरुभूति नाम के दो मंत्री थे। ये दोनों सगे भाई होकर भी विष और अमृत से बने हुए के समान थे। एक समय राज्यकार्य से मरुभूति बाहर गया था उस समय कमठ ने मरुभूति की स्त्री के साथ व्यभिचार का प्रयास किया। राजा अरविंद ने इस बात को जानकर कमठ को दण्डित करके देश से निकाल दिया। वह कमठ अपमान से दुःखी होकर किसी तापस आश्रम में जाकर हाथ में पत्थर की शिला लेकर कुतप करने लगा।

कुछ दिन बाद मरुभूति भाई के प्रेम से वहाँ पहुँचा। उसे देखते ही क्रोध से कमठ ने उसके सिर पर शिला पटक दी। मरुभूति मरकर हाथी हो गया। एक दिन अरविंद महाराज मुनि होकर संघ सहित यात्रा पर जा रहे थे। मार्ग में पड़ाव में उपद्रव करते हुए हाथी वहाँ आया और अरविंद मुनिराज को देखते ही उसे जातिस्मरण हो गया, तब वह शान्त हो गया। मुनिराज के उपदेश से उसने सम्यक्त्व और पाँच अणुव्रत ग्रहण कर लिए।

एक दिन वह सूखे प्रासुक पत्ते खाकर नदी में पानी पीने गया। वहाँ कीचड़ में फंस गया। उसी समय कमठ के जीव (सर्प) ने उसे काट लिया और हाथी महामंत्र का स्मरण करते हुए मरकर देव हो गया। वह सर्प मरकर नरक चला गया।

देव का जीव वहाँ से आकर

रश्मिवेग राजा हुआ। पुनः मुनि होकर तपश्चरण करके स्वर्ग में देव हुआ। पुनः वहाँ से आकर वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ है। पुनः दीक्षा लेकर भील का (कमठ के जीव का) उपसर्ग सहन करके ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हो गया। वहाँ से आकर आनन्द नाम का मंडलेश्वर राजा हुआ। उसने सूर्य विमान को बनवाकर जिन प्रतिमाएं विराजमान कीं। चतुर्मुख, सर्वतोभद्र, कल्पवृक्ष नाम वाली महापूजाएं कीं। पुनः दीक्षा लेकर सोलह कारण भावनाओं के भाने से तीर्थंकर प्रकृति को बांध लिया। अंत में मरकर सोलहवें स्वर्ग में इन्द्र हो गये।

काशी देश की बनारस नगरी में राजा विश्वसेन के घर में महारानी वामा देवी के गर्भ में वह इन्द्र का जीव आ गया। पौष कृष्णा एकादशी के दिन बालक का जन्म हुआ। इन्द्रों ने जन्माभिषेक करके शिशु का नाम 'पार्श्वनाथ' रखा। इनकी आयु सौ वर्ष की थी। शरीर का वर्ण मरकत मणि के समान हरा था एवं शरीर की ऊँचाई नौ हाथ प्रमाण थी। ये उग्रवंशी थे।

बनारस के भेलूपुर में भगवान पार्श्वनाथ के जन्मस्थल का प्रतीक विशाल जिनमंदिर निर्मित है। वहाँ प्रतिवर्ष पौष कृ. 11 के दिन पार्श्वनाथ जनमकल्याणक महोत्सव मनाया जाता है।

किसी समय भगवान क्रीड़ा के लिए शहर के बाहर गये थे। वहाँ उनका नाना कुतापसी पंचाग्नि तप कर रहा था। प्रभु ने कहा—इसमें नागयुगल जल रहे हैं। उसने क्रोध के आवेश में लकड़ी चीर डाली। वे सर्प युगल तड़फने लगे।

प्रभु ने उन्हें उपदेश दिया, जिससे वे दोनों धरणेन्द्र और पद्मावती नाम के भवनवासी देव हो गये। इस घटना से वह तापसी पार्श्वनाथ पर अधिक क्रोध करने लगा। अन्त में मरकर 'शंवर' नाम का ज्योतिषी देव हो गया।

भगवान पार्श्वनाथ ने विवाह नहीं किया था। वे दिगम्बर मुनि बनकर तपश्चरण कर रहे थे। एक समय प्रभु ध्यान में लीन थे। वह शंवर ज्योतिषी उधर से निकला। क्रोध के संस्कार से प्रभु पर भयंकर उपसर्ग करने लगा। भयंकर रूप बनाकर आग उगलने लगा।

भयंकर आंधी पुनः मूसलाधार वर्षा करने लगा। भगवान के ध्यान के

प्रभाव से धरणेन्द्र का आसन कंपायमान हो गया। वे धरणेन्द्र पद्मावती अवधिज्ञान से सब जानकर प्रभु के निकट आये। पद्मावती ने प्रभु को उठा लिया तथा धरणेन्द्र ने प्रभु के मस्तक पर फण का छत्र कर दिया।

प्रभु ने घातिया कर्मों का नाश कर दिया जिससे उन्हें केवलज्ञान प्रगट हो गया और तत्काल वहाँ आकाश में अधर समवसरण बन गया। जहाँ पर भगवान को केवलज्ञान हुआ था उस स्थान का नाम "अहिच्छत्र" तीर्थ है यह उत्तरप्रदेश के बरेली जिले में स्थित है। इस तीर्थ पर अतिशयकारी भगवान पार्श्वनाथ का विशाल मंदिर है तथा वहाँ मेरी प्रेरणा से निर्मित 11 शिखर वाले तीस चौबीसी मंदिर में 720 भगवन्तों की प्रतिमाएं विराजमान हैं। तब कमठ नेभी अपने कृत्यों का पश्चाताप करते हुए धर्मग्रहण कर लिया। कहाँ तो कमठ का निष्कारण बैर? तथा कहाँ ऐसी पार्श्वनाथ की शांति और क्षमा? जहाँ भगवान ने उपसर्ग सहन किया है आज भी वह क्षेत्र 'अहिच्छत्र' नाम से प्रसिद्ध है।

देखो! हाथी ने धर्म के प्रसाद से सप्तपरमस्थान को प्राप्त कर लिया है। अतः धर्म ही जगत में सार है।

प्रश्न—सप्त परमस्थान क्या हैं?

उत्तर—सज्जातिः सद्गार्हस्थ्यं पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता।
साम्राज्यं परमार्हंत्यं परिनिर्वाणमित्यपि।।

अर्थात् **सज्जाति**—माता-पिता के वंश की शुद्धि। **सद्गार्हस्थ्य**—सम्यग्दर्शन और देशव्रतों का पालन करने वाला सच्चा गृहस्थ होना। **पारिव्राज्य**—दीक्षा लेकर मुनि बनना। **सुरेन्द्रता**—सुरेन्द्र पद प्राप्त करना। **साम्राज्य**—चक्रवर्ती पद को प्राप्त करना। **आर्हन्त्य**—तीर्थंकर पद को प्राप्त कर समवसरण की विभूति का स्वामी अर्हंत होना। **परिनिर्वाण**—अन्त में निर्वाण पद प्राप्त कर लेना। ये सात परम स्थान कहलाते हैं। हाथी ने क्रम से रश्मिवेग राजा होकर सज्जाति प्राप्त की, सद्गृहस्थ बने, मुनि बने, इन्द्र हुए, चक्रवर्ती हुए। अनंतर तीर्थंकर होकर अर्हंत बने और सिद्ध हो गये हैं। पार्श्वनाथ के पाँचों कल्याणक देवों ने मनाये हैं।

प्रश्न—क्या सज्जाति के बिना आगे के स्थान नहीं हो सकते हैं?

उत्तर—नहीं! सज्जाति के बिना कोई भी गृहस्थ भगवान की पूजा और मुनि को आहार दान देने का अधिकारी नहीं है, न मुनि दीक्षा लेने का ही अधिकारीहै। अतएव जाति और कुल को पवित्र रखने में बहुत ही सावधान रहना चाहिए।

प्रश्नावली—(1) कमठ और मरुभूति कौन थे? (2) हाथी ने कौन से व्रत ग्रहण किये? (3) कमठ ने पार्श्वनाथ के ऊपर उपसर्ग क्यों किया? (4) सप्तपरमस्थानों के नाम बताओ?

पाठ 26-भगवान बाहुबली

भरत चक्रवर्ती छः खण्ड की दिग्विजय करके आ रहे थे। उनका चक्ररत्न अयोध्या के बाहर ही रुक गया। मंत्रियों ने बताया कि महाराज आपके भाई आपके वश में नहीं हैं। चक्रवर्ती ने दूत को अपने अट्ठानवे भाइयों के पास भेज दिया। उन लोगों ने भगवान ऋषभदेव के पास जाकर मुनि दीक्षा ले ली। पुनः भरत ने एक दूत बाहुबली के पास भेजा। बाहुबली भी चक्रवर्ती के अधीन नहीं हुए। तब दोनों तरफ से युद्ध की तैयारियाँ हो गईं।

उस समय मंत्रियों ने सोचा कि दोनों चरम शरीरी हैं। इनका तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, व्यर्थ ही प्रजा का क्षय होगा अतः तीन प्रकार के धर्मयुद्ध निश्चित किये- दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध। भरत पाँच सौ धनुष ऊँचे थे और बाहुबली सवा पाँच सौ धनुष[1] ऊँचे थे, अतः दृष्टियुद्ध में और जलयुद्ध में भरत हार गये। मल्ल युद्ध में भी बाहुबली ने भरत को उठाकर अपने कंधे पर रख लिया, पुनः उतार दिया। तब भरत को बहुत ही क्रोध आ गया। उन्होंने चक्ररत्न चला दिया किन्तु वह चक्ररत्न अपने गोत्रज बंधुओं का घात नहीं करता अतः बाहुबली की प्रदक्षिणा देकर रुक गया।

उस समय सभी लोग भरत को धिक्कारने लगे। ओ हो! राज्य के लिए आप भाई को मारने लगे तथा बाहुबली की जयजयकार के शब्द आकाश में फैल गये तत्क्षण ही बाहुबली को वैराग्य हो गया। भरत के बहुत कुछ अनुनय करने पर भी, क्षमा याचना करके वे कैलाशपर्वत पर पहुँचकर दीक्षित हो गये तथा एक वर्ष का योग लेकर ध्यान में खड़े हो गये। सर्पों ने उनके चरणों का आश्रय लेकर बामी बना लीं। लतायें योगिराज के ऊपर चढ़ गईं। चिड़ियों ने घोंसलें बना लिए। सर्प और बिच्छू आदि प्रभु के शरीर पर क्रीड़ा करने लगे। योगिराज बाहुबली को अनेक ऋद्धियाँ हो गईं, जिससे तमाम विद्याधर आदि आकर उनके दर्शन करके अपना कष्ट दूर कर लेते थे और करोड़ों मनोरथ सफल कर लेते थे।

1. एक धनुष में चार हाथ होने से भरत 2000 हाथ और बाहुबली 2100 हाथ ऊँचे थे।

प्रश्न–क्या बाहुबली को यह शल्य थी कि मैं भरत की भूमि पर खड़ा हूँ। जब शल्य सहित जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं, तो उनके ऋद्धियाँ आदि कैसे हुईं?

उत्तर–नहीं, उन्हें शल्य नहीं थी। महापुराण में भगवज्जिनसेनाचार्य ने कहा है कि–उनके मन में कदाचित् यह विकल्प हो जाता था कि 'भरत को मुझसे क्लेश हो गया है।[1] इस विकल्प से उन्हें शुक्लध्यान नहीं हो सका था, फिर भी वे भावलिंगी मुनि थे। छठे-सातवेंगुणस्थान में असंख्यातों बार चढ़ते-उतरते रहते थे, मिथ्यादृष्टि नहीं थे और न ही उन्हें शल्य थी। ।

प्रश्न–क्या आजकल पंचमकाल में सच्चे भावलिंगी मुनि होते हैं?

उत्तर–अवश्य होते हैं। जो ऐसा नहीं मानते हैं वे अज्ञानी हैं। देखो! श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने मोक्षपाहुड़ में कहा है– भरत क्षेत्र में आज के इस दुःषमकाल में साधुओं को आत्मस्वभाव में स्थित होने पर धर्मध्यान होता है किन्तु जो यह नहीं मानते, वे अज्ञानी हैं। आज भी रत्नत्रय से शुद्ध मुनिराज आत्मा का ध्यान करके इन्द्र पद तथा लौकांतिक पद को प्राप्त कर सकते हैं और वहाँ से च्युत होकर मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। जो आजकल सभी मुनियों को द्रव्यलिंगी मानकर, उनकीविनय नहीं करते हैं वे स्वयं मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा समझना चाहिए।

अनंतर भरत ने जाकर बाहुबली को नमस्कार किया और पूजा की। तत्क्षण ही उनका विकल्प समाप्त हो गया। वे क्षपक श्रेणी में चढ़ गये और घातिया कर्मों का नाश कर केवली हो गये। देवों ने आकर गंधकुटी की रचना की और पूजा की। चक्रवर्ती भरत ने भी अनुपम सामग्री लेकर अद्भुत पूजा की थी। अनन्तर भगवान बाहुबली बहुत दिनों तक विहार करके कैलाशपर्वत से मोक्ष चले गये।

चक्री भरत ने पोदनपुर में भगवान बाहुबली की 500 धनुष ऊँची मूर्ति विराजमान की थी। कर्नाटक प्रांत के श्रवणबेलगोल में आज से 1000 वर्ष पूर्व श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के नेतृत्व में सेनापति चामुण्डराय ने 57 फीट ऊँची अतिशय मनोज्ञ भगवान बाहुबली की मूर्ति विराजमान की है, जिसके दर्शन करके अपने जीवन को सफल करना चाहिए।

प्रश्नावली–(1) भरत और बाहुबली जी में युद्ध क्यों हुआ? (2) बाहुबली का शरीर कितना ऊँचा था? (3) बाहुबली के ध्यान में खड़े रहने पर क्या-क्या बातें हुई थीं? (4) बाहुबली को क्या शल्य थी? (5) आज पंचमकाल में सच्चे मुनि होते हैं, यह बात कहाँ लिखी है? (6) बाहुबली की मूर्ति का दर्शन किया हो तो उसका वर्णन करो?

1. योग लीन तन पर बिच्छू, सर्पादी क्रीड़ा करते हैं।
लता भुजाओं तक चढ़ती हैं, बहु जनजंतु विचरते हैं।।
अहो ध्यान है धन्य धन्य, धन धन्य योगमय मुद्रा है।
सदा खड़े हैं धर्म ध्यान में, नहीं कदाचित् तंद्रा है।।